* ओ३म् *

ओंकार आदर्श चरितमाला की चतुर्थ पुस्तक

समर्थ गुरु रामदास

भारतवर्ष के उद्धारकर्ता श्री शिवाजी महाराज के

वदनं प्रसाद-सदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

लेखक
पण्डित ब्रजमोहन

सम्पादक तथा प्रकाशक
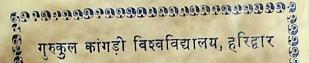
पण्डित ओङ्कारनाथ बाजपेयी

...नाथ बाजपेयी के प्रबन्धसे ओंकार प्रेस प्रयाग
में छपा

सम्वत् १९७२

प्रथम बार २०००] सन १९१५ [मूल्य ।)

नम्र निवेदन

सुहृद उन्नति शील सज्जनों ! शिक्षित समुदाय उन्नति का स्वप्न देख रहा है किन्तु यदि इस समुदाय के कृत्यों पर विचार किया जाय तो सहसा मुख से निकल पड़ता है कि स्वप्न मिथ्या है और उसका सत्य होना बंध्या के पुत्र का विवाह देखने के समान है। शोक का स्थान है कि हमारे भाई जातीयता और राष्ट्रीयता के गीत तो गाते ह किन्तु उनमें से बहुत से तो इस बात को जानते तक नहीं कि जातीय उन्नति किसे कहते हैं और वह कब हो सकती है ?

राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत से पदार्पण करनेवाले सज्जनों ने तो समझ लिया है कि राष्ट्रीयता के भावों का संचार करने के लिये हम को हरिवर्षस्थ पुरुषों का अनुकरण करना ही चाहिये और उन्हीं के चरित्रों को अपना आदर्श बनाना चाहिये ! उनका कथन है कि बिना ऐसा किये देश उन्नति की आशा करना मृगतृष्णा-में जल की आशा करने के समान है इतना ही नहीं बहुधा ऐसे सज्जन, हरिवर्षस्थ पुरुषों का अनुकरण न करनेवालों को "अल्पज्ञ" और "संकुचित विचारधारी" आदि उपाधियाँ भी देते देखे जाते हैं। इन सज्जनों के विचारानुसार भारतवर्ष ऐसे आदर्श चरित्रों से सर्वथा शून्य है अतः यदि इनको कभी नीति की आवश्यकता

पड़ती है तो यह शीघ्र ही सेन्टपाल के समीप दौड़ जाते हैं और यदि उत्तेजक और वीरत्व पूर्ण उदाहरणों की आवश्यकता पड़ती है तो "नेपोलियन" के समक्ष शिर जा झुकाते हैं। कोई "प्रिन्स बिस्मार्क" की जीवनी लिखकर भारत का उद्धार करना चाहता है तो एक दूसरा "वाशिंगटन" का आदर्श भारत वासियों के सामने रखता है। सारांश यह है कि आज कल एक विचित्र प्रवाह चला हुआ है और जिसे देखो वही उसमें बहा चला जाता है।

अपने सिद्धान्तों और पराक्रमी पुरुषों की जीवनी लिखना कुछ बुरा सा समझा जाने लगा है और उसी लेखक को आज अच्छा समझा जाता है जो किसी विदेशी की जीवनी लिख डालता है या किसी अंगरेज़ी ग्रन्थ का अनुवाद कर डालता है।

सज्जनों! इस प्रवाह को आप चाहे कैसा भी समझें किन्तु मैं तो निर्भय होकर कहने को उद्यत हूं कि वह प्रवाह बुरा है और बहुत बुरा है। इस प्रवाह में बहने से कदापि आप जातीय उन्नति नहीं कर सकते।

मित्रो! हमारी जातीय उन्नति हमारे जातीय गौरव को बनाये रखने से होगी न कि उसे नष्ट करने से। हमारा कल्याण महात्मा कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन के चरित्रों को आदर्श बनाने से होगा न कि नैपोलियन और प्रिन्स बिस्मार्क को आदर्श मानकर।

आप इस से यह न समझ बैठें कि विदेशियों की जीवनी पढ़नी ही नहीं चाहिये जहांतक मिल सकें अवश्य पढ़िये किन्तु उद्देश्य यह है कि अपने पूर्वजों को भुलाकर इनके चरित्रों को आदर्श मानना या प्रतिपादन करना उचित नहीं है।

हम को यह जान लेना चाहिये कि शिक्षा, वीरता, विद्वत्ता न्यायशीलता व नीतिज्ञता के लिये यदि हम अन्य देशों का आदर्श भारत सन्तान के समक्ष रखते हैं तो हम अपने पूर्वजों का अपमान करते हैं ऐसा करने से स्पष्ट प्रकट होता है कि ऐसे आदर्श हमारे यहां नहीं है तब ही तो हमको बाहर से उधार लेने पड़ते हैं।

कोई २ सज्जन इस पर कह सकते हैं कि इससे यह तो सिद्ध नहीं होता किन्तु यह मानना चाहिये कि हम उदार-वृत्ति के पुरुष हैं अतः विदेशियों की भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते एवम् उनको भी अपना आदर्श बनाने में कोई हानि नहीं समझते। ऐसे सज्जनों की सेवा में हम विनीत भाव से निवेदन करते हैं कि विदेशियों के गीत गाने मात्र से भी हमारी जातीय उन्नति पर बड़ा आघात पहुंचता है। उदाहरण के लिये देखिये कि अपने पूर्वजों के आदर्श चरित्रों का पाठ करने से हमें शिक्षा प्राप्त होती है और उसके साथ ही साथ अपना जातीय गौरव भी स्मरण होता है किन्तु विदेशियों के आदर्श से हमें थोड़ी सी अपूर्ण शिक्षा के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं होता अर्थात् अपने जातीय गौरव का कोई चित्र हमारे समक्ष नहीं आता। ऐसी दशा में आप कैसे कह सकते हैं कि विदेशियों का आदर्श हमारे समक्ष रखने से आप जातीय उन्नति के शिखिर पर पहुंच जायंगे।

सज्जनों! अपने जातीय गौरव को भुला कर कोई जाति कदापि उन्नति नहीं कर सकती यह अटल सिद्धान्त है अतः ऐसे सज्जनों को जोकि विदेशियों ही के गुण गान करने में अपनी विद्या और बुद्धि का सदुपयोग समझते हैं मेरी इस प्रार्थना पर निष्पक्षता के साथ कृपा पूर्वक विचार करना चाहिये।

परमात्मा की कृपा से हिन्दू जाति का इतिहास भी बड़ा ही पवित्र, उत्तम, शिक्षाप्रद और वीरत्व पूर्ण चरित्रों से खचाखच भरा है अतः कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि हम जातीय उन्नति जैसा पवित्र उद्देश्य रखते हुए अपने पूर्वजों को भुला कर दूसरे की प्रशंसा करने या उनको अपना आदर्श बनाने में अपना समय नष्ट करें।

इस में सन्देह नहीं कि अपने पूर्वजों के अच्छे २ चरित्रों को विविध ग्रन्थों से निकाल कर आर्य जनता के समक्ष रखने के लिये अधिक विद्या और परिश्रम की आवश्यकता है किन्तु विद्या न होने पर और उनको यथार्थता को न जानते हुए विदेशियों की दो चार साधारण पुस्तकें पढ़ कर अपने पूर्वजों के चरित्रों के प्रति उनमें "कोई उल्लेखनीय बात नहीं" ऐसा कहना भी बहुत ही अनुचित प्रतीत होता है।

सन्तोष का विषय इतना ही है कि यह प्रवाह अद्यावधि साधारण कोटि के पुरुषों एवम् अल्पाधीत्य लेखकों व सम्पादकों ही के बीच में स्थान पाया हुआ है और उच्च कोटि के लेखक व सम्पादक ऐसा नहीं समझते। लाला लाजपतराय जैसे विचारशील विद्वान अब भी महात्मा कृष्ण और शिवाजी आदि के आदर्श चरित्रों को लिख कर अपनी लेखनी को पवित्र करते देखे जाते हैं।

सज्जनों! हम को ऐसे ही भारतरत्न लेखकों का अनुकरण करना चाहिये। निस्संदेह! हमारी उन्नति अपने जातीय गौरव को भली भांति समझे बिना नहीं हो सकती।

ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर आज मैं इस समर्थ गुरु रामदास जी की संक्षिप्त जीवनी को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित होता हूं।

यद्यपि मुझ में चरित्र लिखने की शक्ति नहीं तथापि पवित्र और देश की सेवा करने वाले पुरुषों की जीवनी लिखने में मुझे एक प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। इसी स्वार्थ सिद्धि के लिये मैं ऐसा करता हूं।

मोरोपंत जी कहते हैं:—
गावीं संत चरित्रें हो।
पावन परम पवित्रें हो॥

अर्थात् परम पवित्र संत चरित्र का गान करना चाहिये।

एक महात्मा ने कहा है कि षट रसों में मधुर रस सर्वोत्तम है और संसार में अनेक पदार्थ अत्यन्त मधुर होते हैं किन्तु इनमें संत चरित्र के माधुर्य्य को कोई नहीं पहुंचता।

उत्तम अन्न या उत्तम फल के माधुर्य्य को केवल जिव्हा रस स्वादन करती है और उससे केवल जड़ देह ही पुष्ट होती है किन्तु संत चरित्र के माधुर्य्य को अंतः करण अनुभव करता है और उस से मन और आत्मा की पुष्टि होती है।

इतने पर भी आज जिस चरित्र को लेकर मैं आपके समक्ष उपस्थित होता हूं वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है और ऐसे नर रत्न का है जिसने कि महर्षि १०८ श्री स्वामी शंकराचार्य्य जी और स्वामी दयानन्द जी सरस्वती की भाँति हिन्दू जाति को एक समय नष्ट होने से बचाया है।

वह भारत जननी का सपूत वर्ण का ब्राह्मण था अथवा यों कहिये कि आदर्श ब्राह्मण था। ब्राह्मणों का कर्त्तव्य उपदेश देना और देशका सुधार करना है उसे स्वामी जी ने भली भांति पूरा किया।

क्षत्रियों को तो कर्तव्य पथ पर आरूढ़ होने के लिये समर्थ का जन्म ही हुआ था अतः यह लिखने की आवश्यकता नहीं

जान पड़ती कि इस चरित्र से क्षत्रियों को कितनी शिक्षा प्राप्त होगी ?

अहो ! स्वामी जी ने शिवाजी को छत्रपति शिवाजी बना कर उन्हें वस्तुतः भारत के लिये शिव अर्थात् कल्याण कारी बना दिया। स्वामी जी की इस अनुपम उपदेश शक्ति को देखकर धन्य हो ! स्वामी जी ! तुम धन्य हो ! सहसा यह वाक्य मुख से निकल पड़ते हैं। छत्रपति शिवा जी एक स्थान पर स्वामी जी के उपदेशों से मुग्ध होकर विरक्त भाव धारण करते हैं किन्तु समर्थ जी अपने उपदेश सामर्थ्य के बल से क्षत्रियों के कर्म और धर्म का प्रतिपादन करके पुनः क्षत्रियोचित कर्त्तव्य पर उन्हें आरूढ़ कर देते हैं। ऐसे ऐसे स्थलों से क्षत्रियों को अपने कर्तव्य का बोध होगा।

गुरुओं और शिष्यों में परस्पर कैसा व्यवहार होना चाहिए इस बात की शिक्षा भी इस चरित्र से स्थान २ पर मिलेगी।

इस सबके अतिरिक्त एक बात और बतलानी है और वह यह है कि इस चरित्र में स्वामी जी के कुछ चमत्कारों का भी वर्णन है किन्तु आज कल हम लोगों में कुछ ऐसा रोग फूट निकला है कि जो बात हमारी समझ में नहीं आती उसे तत्काल असम्भव बतला कर एक कल्पित आख्यायिका कह डालते हैं।

बहुत से वेद विद्याभूषणधारी सज्जन तो ऐसे उत्पन्न हो गये हैं जो भीम के वृक्ष उखाड़ने को भी एक कल्पित गाथा समझते हैं। ऐसे महात्माओं को स्वामी जी के चमत्कार यद्यपि सर्वथा असम्भव प्रतीत होंगे तथापि निवेदन है कि ऐसे सज्जन महर्षि १०८ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की जीवनी को विचार पूर्वक पढ़ने की कृपा करें। मुझे

विश्वास है कि यदि वे उसे विचार पूर्वक पढ़ने की कृपा करेंगे तो विदित हो जायगा कि स्वामी जी की जीवनी ही में एक नहीं प्रत्युत शतशः चमत्कार भरे पड़े हैं।

जिस इच्छा शक्ति का परमात्मा सृष्टि की आदि में उपयोग करते हैं उसी इच्छा शक्ति के प्रताप से योगी जन अनेकानेक कठिन से कठिन कार्य कर डालते हैं और उन्हें देखकर हम आश्चर्य्यान्वित होने लगते हैं।

इसके प्रमाण में मैं स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के जीवन की एक घटना का उल्लेख करता हूं।

स्वामी जी के समीप बहुत से पं० भीमसेन जी जैसे बड़े बड़े संस्कृतज्ञ पंडित लेखक का काम किया करते थे। इसको तो प्रायः सब ही जानते हैं। स्वामी जी के पास वेतन का कोई नियम नहीं था जिसका जितनी आवश्यकता होती थी उसको उतनी ही दे दिया जाता था। एक दिवस एक पंडित के घर से पत्र आया कि उसकी कन्या का विवाह शीघ्र ही हो जाना चाहिये। वर का पिता शीघ्रता करता है।

यह जान कर उक्त पंडित को बड़ी चिन्ता हुई। पंडित को चिन्तित देखकर स्वामी जी ने पूछा क्यों चिंतित हो? इस पर पंडित जी ने सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया। यह सुनकर स्वामी जी ने पूछा कि कितने धन की आवश्यकता है और कब जाना चाहिये?

पंडित ने कहा कि मुझे दो चार ही दिन में चला जाना चाहिये और कम से कम ५००) की आवश्यकता है।

स्वामी जी ने "कहा सब परमात्मा प्रबंध करेगा।"

इसके कुछ ही समय पश्चात एक मनुष्य कहीं से अकस्मात् रुपया लेकर आ पहुंचा और स्वामी जी ने पंडित को

कह दिया कि जितना रुपया चाहिये उतना लेकर चले जाओ।

इस वृत्त को पं० पन्नालाल जी शास्त्री संस्कृत प्रोफ़ेसर कैनेडियन मिशन कालेज इन्दौर ने पं० गोपालराव जी चीफ़ क्लर्क रेली ब्रादर्स एजेंसी कानपुर पर प्रकट किया था। ये शास्त्री जी उस अवसर पर स्वामी जी के पास ही लेखक का काम करते थे।

आप बहुधा कहा करते थे कि स्वामी जी कोई साधारण मनुष्य नहीं थे। वे एक अवतार थे और अपनी इच्छा से भारतवर्ष का कल्याण करने के निमित्त संसार में आये थे भारत वासियों को उनका विरोध करना मूर्खता है इत्यादि।

इसके अतिरिक्त शीतकाल में मग्न रहना बरफ़ पर चलना एक बार मृत्यु की कामना करके पुनः अपने उद्देश्य का स्मरण होने पर उसे टाल देना तथा विष के प्रभाव को दो बार नष्ट कर डालना क्या कोई साधारण काम है।

सारांश यह है कि योग में अपार शक्ति है। नास्ति योग समोबलम्—योग के समान कोई बल नहीं है अतः योगियों के कृत्य पर आश्चर्य प्रकट करना उचित नहीं जान पड़ता इतने पर भी यदि आपको कोई बात सर्वथा असम्भव ही जान पड़े तो आप उसे अपने हृदय में स्थान दें न मेरी यह प्रतिज्ञा ही है कि इस में की सब बातें ठीक ही होंगी। मैंने तो जितना पाया है उतना लिख दिया है।

इन सब बातों के अतिरिक्त एक और मुख्य शिक्षा हमको समर्थ श्वामी रामदास जी के परम पवित्र चरित्र से प्राप्त होती है किन्तु उसे पाठकों को स्वयम् खोज निकालना चाहिये

नोट—पं० गोपालराव जी अब भी रेली ब्रादर्स एजेंसी कानपुर में है और शास्त्री जी तीन वर्ष व्यतीत हुए रतलाम में थे। ता० २—३ १५

हां इतना हम बतलाये देते हैं कि उसका सम्बन्ध मनष्य और शिखाधारी मात्र से है।

अन्तिम निवेदन यह है कि एक प्रकार से नहीं किन्तु अनेक प्रकार से और एक मनुष्य के लिये नहीं किन्तु प्रत्येक मनुष्य के लिये यह चरित्र बहुत ही शिक्षा प्रद है।

मराठी साहित्य ही नहीं किन्तु स्वामी जी की प्रशंसा पर श्लोक यथाः—

कृतेतुमारुताख्याश्च त्रेतायां पवनात्मजः
द्वापरे भीमसंज्ञश्च रामदासः कलौयुगे ॥

भविष्य आदि पुराणों में भी उपस्थित है ऐसी दशा में स्वामी जी के एक प्रतिभा सपन्न पुरुष होने में कोई सन्देह शेष नहीं रहजाता।

छत्रपति शिवाजी ने स्वामी जी के उपदेशामृत का पान करके हिन्दू जाति का उद्धार किया था ऐसी दशा में यदि उनके चरितामृत का पान करके हम केवल अपना अपना ही उद्धार कर डालें तो कौन से आश्चर्य की बात है?

हे परमात्मन्! हमें शक्ति दीजिये कि हम स्वामी जी के चरित्र को अपने लिये आदर्श बनासकें और उनके शिक्षाप्रद चरित से कुछ शिक्षा ग्रहण करते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करें किमधिकम् विज्ञेष—

चैत्र प्रतिपदा
१९७२ विक्रमी
कानपुर

निवेदक
ब्रजमोहन झा

वंश परम्परा

"राणुबाई ! तुम्हारी कुक्षि धन्य है।"
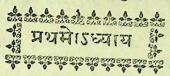
दक्षिण देश में जिस समय हिन्दू नरेशों ने राज्य स्थापित किया उस समय वे लोगों को धन और भूमि देकर अपने राज्य में बसाते थे। उस समय बहुत से लोग मुसल्मानी राज्यान्तर्गत वेदर प्रान्त को छोड़ कर गंगा नदी के तट पर जाकर बसे। इन्हीं पुरुषों में जामदग्न्य गोत्री आश्वलायन सूत्रस्थ कृष्णाची पंत ठोसर नामक एक देशस्थ ब्राह्मण भी थे। आप कुटुम्ब सहित हिवरा ग्राम वीड़ प्रान्त में शाके ८८४ सन् ९६२ ई० में निवास करने लगे।

कृष्ण जी पंत ने इस प्रान्त में राक्षस भुवन आदि ४८ गांव बसाये और उन्हीं में पटवारी और ज्योतिषी की वृत्ति से आप अपना निर्वाह करने लगे। कृष्णजी पंत के चार पुत्र हुए और इनमें से सबसे बड़े का नाम दशरथ पंत था किन्तु इन्होंने अपने पिता के प्राप्त किये हुए धन से निर्वाह करना अनुचित समझा अतः यह हिवरा से तीन कोस पर एक बड़े गांव में जा बसे। यह गांव प्रायः उखड़ गया था और इसमें केवल गाय चराने वाले कुछ ग्वाले निवास करते थे। यहां आकर दशरथ-पंत ने एक लखमा जी नामक ग्वाले को उस गांव का स्वामी

बना दिया और आप पटवारी और पुरोहिती वृत्ति से अपना निर्वाह करने लगे। इस गांव का नाम दशरथ पंत ने जाँब रक्खा। कुछ समय पश्चात् जांब के आस पास १२ गांव और बस गये और इनमें भी पटवारी और पुरोहित का कार्य दशरथ पंत ही करने लगे।

दशरथ पंत जी शाके ६१० सर्वधारी नामक संवत्सर में जांब में जाकर रहे थे। आपके छः पुत्र हुए। बड़े पुत्र का नाम रामाजी पंत था। रामाजी पंत को इनके पिता ने जांब और आसन गांव नामक दो ग्राम दिये।

यह तीन पुरुष अर्थात् कृष्णा जी पंत, दशरथ पंत, और रामाजी पंत समर्थ स्वामी रामदास जी के वंश की पहिली तीन पीढ़ियों के क्रमशः मूल पुरुष थे। रामाजी पंत के पश्चात् बहुधा एक २ पुत्र होता गया और कृष्णा जी पंत की २२वीं पीढ़ी में सूर्या जी पंत का जन्म हुआ। बड़े होने पर सूर्या जी-पंत के पिता त्र्यम्बक पंत ने इनका विवाह एक राणुबाई नाम्नी सुशीला और सुकुलोत्पन्ना कन्या से कर दिया।

यही स्वनामधन्य सूर्याजी पंत और राणुबाई समर्थ स्वामी रामदास जी के पिता और माता हैं। सज्जनों! धन्य हैं ऐसे पुरुष जिनके घर में भारतवर्ष के उद्धार कर्त्ता जन्म लेते हैं।

सूर्याजी पंत सूर्योपासक और बड़े हो परोपकारी एवम दयालु प्रकृति के मनुष्य थे।

परमात्मा की कृपा से राणुबाई गर्भवती हुईं और शाके १५२७ विश्वावसु नाम सम्वत् सर में मार्ग शीर्ष शु० १३ को गुरुवार के दिवस आपने एक पुत्र प्रसव किया। इस बालक का नाम गंगाधर पंत आगे चल कर श्रेष्ठ और रामी रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बाल गंगाधर पंत के ढाई वर्ष पश्चात्-शाके १५३० कील नाम संवत्सर (अप्रेल १६०८ ई०) में चैत्र शुक्ल ६ रविवार की दोपहर के समय राणुबाई ने दूसरा पुत्र प्रसव किया और इसका नाम "नारायण" रक्खा गया। यही 'नारायण' आर्य जाति के रक्षक और हमारे चरित नायक हैं। जिस समय से घर में "नारायण" आये उसी समय से सूर्या जी पंत के गृह में सुख, और शान्ति की वृद्धि होने लगी।

इस समय दक्षिण में "एक नाथ' नाम के एक बड़े प्रसिद्ध योगी थे और सूर्या जी पंत अपनी सहधर्मिणी के सहित प्रति वर्ष उनके दर्शन करने जाया करते थे।

नियमानुसार सूर्या जी पंत इस वर्ष भी दर्शनार्थ गये और उनके समीप कई दिन ठहरे। एक दिन स्वामी जी ने "नारायण" को गोद में लेकर बहुत प्यार किया और राणुबाई को सम्बोधन करके कहा "तुम धन्य हो! तुम्हारी कुक्षि धन्य है! अभी दक्षिण में एक राजा उत्पन्न होगा और इसके द्वारा नारायण पृथ्वी के भार को हरण करेगा।"

कुछ दिन पश्चात् सूर्य जी पंत घर लौट आए। यहां आने पर लोग बाल गंगाधर को "श्रेष्ठ" कह कर सम्बोधन करने लगे और उसका कारण यह था कि "एक नाथ" जी ने इसे एक बार श्रेष्ठ कह कर सम्बोधन किया था। आगे चलकर हम भी स्वामी एक नाथ जी का अनुकरण करेंगे पाठक स्मरण रक्खें। श्रेष्ठ का स्वभाव अत्यन्त शान्त था और यह बहुत धीरे २ चलते थे। कुछ दिन के पश्चात् श्रेष्ठ पांच वर्ष के हुए तो इनके पिता ने इनका यज्ञोपवीत संस्कार किया। आश्चर्य की बात है कि इतनी अल्पावस्था में श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य्य के सब नियमों को समझने में सशक्त थे।

दस वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपने पिता से गुरुमंत्र मांगा किन्तु उनको कोई विशेष मंत्र आता न था अतः यह एक मंदिर में गये और वहां जाकर मंत्र ग्रहण किया। इसके पश्चात् श्रेष्ठ ने अपना नाम "रामी रामदास" रक्खा।

द्वितीयोऽध्यायः।

नारायण की बाल लीला

"पडला! पडला!!"

नारायण छोटेपन में सदैव प्रसन्न रहा करते थे। इनको कभी किसी ने रोते नहीं देखा। दो वर्ष के भीतर ही यह भली भांति बोलने चालने लगे। दिन दिन कान्ति बढ़ने लगी, किन्तु स्वभाव के आप बड़े नटखट थे। पल भर भी एक स्थान पर नहीं ठहरते थे। खेल में बड़ा उपद्रव करते थे। बन्दर की भांति मुंह बनाकर लड़कों को चिड़ाना और उनको तंग करना इनका एक साधारण काम था।

जब सूर्य्या जी पंत ने देखा कि यह बहुत उपद्रव करते हैं तब उन्होंने हमारे नटखट नारायण को भैया जी के पास पढ़ने को बैठा दिया किन्तु भैया जी के पास जो कुछ पढ़ना लिखना होता है उसे हमारे नारायण ने एक ही वर्ष में समाप्त कर डाला और पुनः इधर उधर खेलना और उपद्रव करना आरंभ कर दिया। रात दिन लड़कों के साथ खेलते थे। बड़े २ ऊंचे और टेढ़े वृक्षों पर आप सहज ही में चढ़ जाते थे और पुनः बन्दर की भांति एक डाली से दूसरी डाली पर

उड़ी लगाते थे। कभी २ यह इतनी पतली डाली पर चढ़ जाते थे कि साथ के लड़के "पडला २" अर्थात गिरा २ कह कर चिल्लाने लगते थे। एक छप्पर से दूसरे छप्पर पर जाने और एक दिवार से दूसरी दिवार पर कूदने और तैरने में इनको कुछ भी भय नहीं लगता था।

ऐसे ही स्वभाव के कारण लोग इनको बली हनुमान का अवतार बतलाते हैं।

पांच वर्ष में सूर्य्याजीपंत ने इनका यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी धूमधाम के साथ कराया और उसके पश्चात् एक सुयोग्य ब्राह्मण को इनकी शिक्षा के लिए नियत करदिया। इसी ब्राह्मण के पास "बाल नारायण" ने सुन्दर अक्षर लिखना सीखा और कुछ संस्कृत का भी अभ्यास किया। उसी समय जब कि हमारे बाल नारायण सात वर्ष के थे शाके १५३७ राक्षस नाम संवत्सर में इनके पिता सूर्य्याजी पंत का शरीरान्त हो गया। दोनों भाइयों ने पिता का उत्तर कार्य्य किया और उसके पश्चात् बालगंगाधर उपनाम "श्रेष्ठ" इनके पठन पाठन पर दृष्टि रखने लगे। यों तो "नारायण" जन्म ही से संन्यासी प्रकृति के मनुष्य थे परन्तु पिता के मरने पर उस बिरक्तता में और भी वृद्धि हो गई। "श्रेष्ठ" जो कि पहले ही गंभीर और शान्त प्रकृति के बालक थे इस समय बड़े होने पर और भी शान्त हो गए।

मंत्र प्राप्ति

"देश का उद्धार करो"
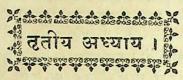
मनुष्य को मंत्र दीक्षा देना इनके कुल में सर्वदा से चला आया था अतः बहुत से मनुष्य मंत्र लेने के लिये भगवद्भक्त श्रेष्ठ के समीप आने लगे। एक दिन एक मनुष्य श्रेष्ठ से दीक्षित होने आया और नियमानुसार श्रेष्ठ ने उसे मंत्र का उपदेश किया। यह देख कर हमारे बाल नारायण ने भी मंत्र ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की किन्तु "श्रेष्ठ" ने "अभी तुम छोटे हो" ऐसा कह कर टाल दिया।

इस प्रकार का उत्तर पाकर हमारे "नारायण" ने चुप हो कर बैठना उचित न समझा और गोदावरी के तट पर एक देवालय में जाकर परमात्मा की प्रार्थना करना आरंभ किया। इसी देवालय में आपके आत्मा में परमात्मा की प्रेरणा से ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। आपको विदित हुआ कि मेरा उपदेष्य मुझसे कुछ कह रहा है! ध्यान देने पर विदित हुआ कि उपदेष्य के वचन यह हैं।

"सर्व पृथ्वी म्लेच्छमय झाली आहे, ह्या करितां आपण वैराग्य वृत्ति ने कृष्णातीरी राहून उपासना व ज्ञान यांची वृद्धि करन जगदुद्धार करावा" अर्थात् सारे भूमण्डल पर यवन छाए हुए हैं इसलिए वैराग्य वृत्ति से कृष्णातीर रह कर उपासना और ज्ञान की वृद्धि कर के जगदुद्धार करो।

अहो ! कैसा उत्तम मंत्र है ? कैसा उत्तम उपदेश है किन्तु क्या ऐसा उपदेश प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त हो सकता है। नहीं ! कदापि नहीं !! यह मंत्र उन्हीं महापुरुषों को प्राप्त होता है जिन्हों ने कि पूर्व जन्म में भी कोई तपश्चर्या की है और उसके अतिरिक्त इस समय इस जन्म में भी सच्चे भगवद्भक्त और पूर्ण वैराग्यवान हैं। बाल नारायण के पश्चात् यही ज्ञान बाल मूलशंकर के आत्मा में प्रादुर्भूत हुआ था ! परमात्मा करे ऐसे शुद्ध आत्मा हमारे देश में सदैव शरीर धारण किया करें।

जिस स्थान पर हमारे "नारायण" के आत्मा में यह ज्ञान प्रादुर्भुत हुआ उस स्थान पर पांच वृक्ष थे अतः बहुत से लोग उसे "पंचबटी" कहा करते थे। पंचबटी नाम से बहुत से लोगों को पंचबटी नासिक का भ्रम हो जाता है किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि यह स्थान नगर ही में है।

जिस समय बाल नारायण परमात्मा के ज्ञान से दीक्षित हो रहे थे उस समय आपके घर के लोग बड़े संकट में थे। वे समझते थे कि नारायण किसी आपत्ति में फंस गये। सब से अधिक चिन्ता इनकी माता को थी किन्तु श्रेष्ठ जोकि हमारे नारायण के स्वभाव से परिचित थे उन्हें समझाते थे और कहते थे कि चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। नारायण बहुत सुबोध है। उसको कोई कष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार समझाने पर भी जब माता की शान्ति नहीं हुई तब श्रेष्ठ नारायण को ढूंढने निकले।

यह थोड़ी ही दूर गये थे कि इनको नारायण देख पड़े। इस समय इनके मुख पर एक विलक्षण प्रकार का दिव्य तेज झलकता था।

देखते ही श्रेष्ठ ताड़ गए कि इन पर परमात्मा की कृपा हुई।

यहां से यह दोनों महापुरुष माता जी के समीप आए। माता जी भी दिव्य तेजधारी नारायण को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

चतुर्थोऽध्यायः ।

बिवाह प्रसंग।

"न मातुः परः दैवतम्"

एक समय राणुबाई ने विचार किया कि मेरे नारायण के दो हाथ से, चार हाथ हो जाने चाहिए अर्थात् उनका विवाह कर डालने की चिन्ता हुई इसके पश्चात् माता जी ने बाल नारायण के बिवाह की बात चीत करना आरम्भ किया। एक दिन यह बातचीत बालनारायण की उपस्थिति में की गई किन्तु बिवाह का शब्द सुनकर वालनारायण को बहुत बुरा लगा। इसके पश्चात् जब जब बिवाह का विषय उठाया गया तब तब बाल नारायण को बहुत क्रुद्ध होते देखा गया। एक दिन बिवाह का प्रसंग सुनकर यह बहुत क्रोधित हुये और क्रुद्ध होकर गांव के बाहर एक वृक्ष पर जा चढ़े। यह दशा देखकर उनको बहुत से लोग समझाने गए किन्तु बाल नारायण ने उनको पत्थर मार २ कर भगा दिया अन्त में श्रेष्ठ गये और उनको लिवा लाये।

जब राणुबाई अर्थात् बाल नारायण की माता जी ने देखा कि लग्न का विषय उठाते ही लड़का उपद्रव करने लगता है तब उन्होंने उपाध्याय जी से समझाने के लिये कहा। माता जी के कथनानुसार एक दिन उपाध्याय जी ने बाल नारायण को बुलाया और इस प्रकार समझाना आरम्भ किया, "हे! नारायण अब तुम बड़े हो गए हो अतः तुम्हारे लिए अब बाल चेष्टा करना शोभा नहीं देता, तुम्हारे पिता जी नहीं हैं इसलिये तुमको समझ बूझ कर कार्य करना चाहिये। गाँव के लड़कों को मारना और इधर उधर भागजाना यह अच्छी बातें नहीं हैं। तुम इन सबको छोड़ दो। तुम्हारी माता तुम्हारा विवाह करना चाहती है किन्तु तुम विवाह का नाम सुनते ही उपद्रव मचाने लगते हो यह कौन सी अच्छी बात है? तुमको ऐसा कदापि न करना चाहिये' बाल नारायण इस उपदेश को चुपचाप सुनते रहे। इस बातचीतके पश्चात् आप एक दिन घरसे बाहर निकल कर गंगा के तट पर एक बरगद के वृक्ष पर जा चढ़े। कुछ समय पश्चात् नारायण की खोज होने लगी और आप उस वृक्ष पर पाए गए।

लोगों ने समझाना आरम्भ किया किन्तु आपने किसी की बात न सुनी जब लोगों ने बहुत तंग किया तो आप वहीं से पानी में कूद पड़े और डुबकी लगाकर अन्तर्द्धान होगये। इस समय इनका शिर पत्थर से टकरा कर टूट गया और इसका चिन्ह इनके माथे पर मरण पर्य्यन्त बनारहा। नारायण को पानी में गिरते देख लोगों में हा हा कार पड़ गया और उनमें से बहुत से सज्जन डुबकी लगाकर इन्हें ढूंढने लगे कुछ समय में इस समाचार को सुनकर श्रेष्ठ भी यहां आ पहुंचे और जब इन्हों ने देखा कि कुछ पता नहीं लगता तो

उस स्थान पर जाकर नारायण २ नाम लेकर चिल्लाना आरंभ किया। भाई का शब्द सुनते ही नारायण जल से बाहर निकल आए और यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ अन्त में दोनों भाई माता जी के पास चले आये।

यह उपद्रव देखकर राणूबाई को बड़ी चिन्ता हुई और वे सोचने लगीं कि नारायण को किस रीति से विवाह के लिये उद्यत किया जाय? यह सोचकर उन्होंने श्रेष्ठ से इस विषय में पुनः एकबार बातचीत की। माता जी की बात सुन कर श्रेष्ठ ने कहा "माता जी नारायण की इच्छा विवाह करने की नहीं हैं इस लिये तुम इस खट पट में न पड़ो आप यदि इस विषय में अधिक आग्रह करेंगी तो नारायण भी हाथ से जाता रहेगा। माता जी ने प्रेम के वशीभूत होकर श्रेष्ठ की बात पर कुछ ध्यान न दिया अन्त में श्रेष्ठ ने कह दिया जैसो आपकी इच्छा हो वैसा करो।

पानी में कूद पड़ने के उपरान्त "नारायण" अस्वस्थ हो गए थे किन्तु अब धीरे २ अच्छे होने लगे। अच्छे होनेपर यह एक दिन माता जी के समीप बैठे। माता जी ने इनकी पीठ पर हाथ फेरा और बहुत प्यार करके कहा, "नारायण माझें वचन तुला मान्य आहे कि नाहीं?" अर्थात् हे नारायण! तुमको मेरे वचन मान्य हैं या नहीं?

माता जी के वचन को सुनकर हमारे बाल नारायण ने जो उत्तर दिया सो हमको और प्रत्येक हिन्दू जाति के बालक को अपने हृदय पटल पर अङ्कित कर लेना चाहिये "माते श्री! हे आम विचारता? आपले वचन मान्य करावयाचें नाहीं तर मग कोणाचें करावयाचें न मातुः परः दैवतम् असें शास्त्र वचन च आहे" अर्थात् हे माता जी! यह आपने क्या कहा?

आपके वचन मान्य न होंगे तो किसके होंगे। माता से बड़ा देवता कोई नहीं ऐसा शास्त्रों में स्पष्ट कहा है।

बाल नारायण के इस उत्तर को सुनकर माता जी बहुत प्रसन्न हुईं और बोलीं। यदि ऐसा है तो विवाह की बात उठाने पर तू ऐसा पागलपन क्यों करता है? तुझे मेरी शपथ है। अन्तर पट पकड़ने तक नाहीं न करना।

माता जी की कठिन आज्ञा सुनकर समर्थ कुछ समय के लिये विचार सागर में डुबकियां लगाने लगे किन्तु कुछ सोच विचार कर बोले "मीं अन्तरपाट धारी पर्यन्त नहीं म्हण-नार नाहीं" अर्थात् मैं अन्तर पट पकड़ने तक नाहीं नहीं करूंगा। भोली माता नारायण की माया को समझ न सकी और यह जानकर कि लड़का विवाह के लिये उद्यत हो गया बहुत ही आनन्दित हुई उन्होंने अपने इस आनन्द को श्रेष्ठ पर भी प्रकट किया किन्तु माता की बात सुनकर श्रेष्ठ हंसे और क्यों न हो कह कर चुप हो गए। इसके पश्चात् विवाह की बात सुनकर नारायण कभी क्रुद्ध न हुये। लड़का विवाह के लिये उद्यत है यह जानकर राणूबाई के एक भाई भानजी गोस्वामी की सुशीला और सुन्दर कन्या को सर्वमतानुसार विवाहार्थ निश्चय किया गया सब प्रबन्ध ठीक होगया। तिथि निश्चित हो जाने पर बरयात्रा के साथ श्रेष्ठ आसन गांव पहुंचे। श्रेष्ठ और नारायण एक दूसरे की ओर देख कर मंद २ हंसने लगे। तदनन्तर अन्तरपट पकड़ने का अवसर आया। इस समय ब्राह्मणों ने मंगलाष्टक पढ़ा और सबने मिलकर एक स्वर से सावधान कहा। सावधान का शब्द सुनकर नारायण ने मन में विचार किया कि मैं तो सदैव सावधान हूं किन्तु इतने पर भी ये लोग सावधान होने को मुझे सचेष्ट करते

हैं इसमें कुछ न कुछ भेद है। इसके अतिरिक्त माता जी के साथ मैंने जो प्रतिज्ञा की है सो भी पूर्ण होगई। ऐसा विचार कर नारायण मंडप से उठ बैठे और एक ओर को चल दिये।

नारायण को उठते देख कुछ लोग इनके पीछे चले किन्तु बाहर निकल कर आप बड़े वेग से भागे। इनको भागते देख कर लोग बड़े अचंभित हुए और "नवरा पठाला! नवरा पठाला"। अर्थात् दूल्हा भागा दूल्हा भागा इस प्रकार चिल्लाने लगे। यह सुनकर बहुत से लोगों ने इनका पीछा किया किन्तु कोई न पकड़ सका इसके पश्चात् बहुत से लोग इनको खोजने निकले। नदी, पहाड़, जंगल और कुएं सब कुछ देख डाले किन्तु कहीं पता न चला, यह उपद्रव देखकर माता जी ने शिर धुन २ कर रोना आरंभ किया। माता जी को रोते देख श्रेष्ठ ने कहा आपको कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैंने आपसे पहले ही निवेदन किया था कि आप इस खटपट में न पड़ें अस्तु अब जो हुआ सो हुआ श्रेष्ठ की बात सुनकर माताजी को कुछ शान्ति हुई। माता जी के शांत होने पर चिंता यह हुई कि लड़की का क्या किया जाय सर्वसम्मति से निश्चित हुआ कि इसका विवाह दूसरे वर से कर देने में कोई हानि नहीं है सारांश यह है कि लड़की का संबंध एक दूसरे वर से कर दिया गया और श्रेष्ठ आदि सब मनुष्य गांव को चले आये। यहां आने के पश्चात् श्रेष्ठ अपने भगवद्भजन में लग गये और भक्त रहस्य आदि ग्रन्थ लिखकर देश उपकार का कार्य आरंभ किया।

पञ्चमोऽध्यायः
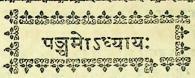
तपश्चर्य्या

"मैं तो केवल देव ब्राह्मणों का दास हूं"

मण्डप से भाग कर हमारे बाल नारायण तीन दिन पर्य्यन्त एक पीपल की जड़ में छिपे रहे और चौथे दिन नासिक पंचवटी को चले गए। पंचवटी में रामचन्द्र जी के दर्शन करके आप टाकली पहुंचे और वहीं पर एक गुफ़ा में रह कर तपश्चर्य्या करने लगे। इस समय हमारे नारायण का वय केवल १२ वर्ष का था। यहां पर आप नित्य प्रातः काल उठकर गंगा स्नान को आते थे और दोपहर पर्य्यन्त कमर भर जल में खड़े रह कर मंत्र पुरश्चरण करते थे। तदुपरान्त गांव में भिक्षा मांग कर भोजन करते थे। इस प्रकार तपश्चर्य्या करते २ कई वर्ष बीत गए। एक दिन परमात्मा ने पुनः प्रेरणा की कि "कृष्णा-तीर जाकर जगदुद्धार करो"। इस समय समर्थ ने प्रतिज्ञा की कि "करूंगा"।

सज्जनो! अब हमारे नारायण ने तपस्वी का रूप धारण करके कठिन तपश्चर्य्या करना आरम्भ कर दिया और एक काल पर्य्यन्त आप अपने व्रत का निर्वाह भी कर चुके हैं अतः अब इनका परिचय "नारायण" कह कर कराने में धृष्टता विदित होती है। उचित है कि आगे हम भी समर्थ या

स्वामी जी कह कर ही इनका परिचय कराया करें। पाठक स्मरण रक्खें।

इस समय स्वामी जी कुछ न बोलते थे और निरन्तर जल में खड़े रहने के कारण इनकी कटि से नीचेवाला भाग सफ़ेद पड़ गया था।

टाकली के पास एक दशक पंचक नामक गांव था उसमें एक बड़ा श्रीमान् अत्रि गोत्री पटवारी रहता था किन्तु इसके कोई सन्तान न थी। प्रारब्ध भोग से इसे क्षयरोग हो गया अन्त में यह बहुत निर्बल हो गया। यहां तक कि एक दिन लोग इसे मृतक समझ कर स्मशान ले चले। इसकी पतिव्रता स्त्री को पति की मृत्यु से बड़ा शोक हुआ और वह भी पति के साथ सती होने के लिये चलदी। मार्ग में स्वामी जी की गुफ़ा पड़ती थी अतः जाते समय इस अबला की दृष्टि स्वामी जी पर जा पड़ी। सौभाग्यवश इस अबला ने शोक के वशीभूत होते हुए भी स्वामी जी को प्रणाम कर लेना आवश्यक समझा अतः इसने समीप जा कर "समर्थ" जी के चरणों पर अपना शिर रख दिया। शिर के पैर पर लगने से स्वामी जी ने आखें खोल दीं और देखा कि एक अल्पवयस्का स्त्री खड़ी हुई है।

स्त्री को देखकर स्वामी जी ने साधारण स्वभाव से "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव" ऐसा आशीर्वाद दे डाला। आशीर्वाद के शब्दों को सुनकर युवती बड़ी अचंभित हुई और उसने रो २ कर अपना दुखड़ा स्वामी जी को सुनाया किन्तु समर्थ को विशुद्ध योगबल से पूर्णतया निश्चय होगया था कि यह पतिव्रता विधवा होकर कदापि दुःख नहीं भोग सकती अतः उन्होंने पुनः सरल स्वभाव से कह दिया कि

"अच्छी तरह देख तेरा पति मरा नहीं है"।

स्वामी जी के वाक्यों को सुनकर सब लोग बहुत चकित हुए किन्तु देखने पर विदित हुआ कि वास्तव में वह मरा नहीं किन्तु जीवित है। इस चमत्कार को लोग देख कर बहुत आश्चर्यित हुये और स्वामी जी की प्रशंसा करने लगे किन्तु स्वामी जी ने कहाः—

"स्तुतीचें काही कारण नाहीं, मी केवल देव ब्राह्मणाचा दास आहें।" अर्थात् प्रशंसा करने की कोई आवश्यकता नहीं मैं तो केवल देव ब्राह्मणों का दास हूं।

मित्रो सत्य है! स्वामी जी का कथन अक्षरशः सत्य है। ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी होते हैं अतः जो उनकी सेवा करेगा वह भी ब्रह्मज्ञानी हो जायगा और जो ब्रह्मज्ञानी है अर्थात् जिसका ज्ञान व्यापक है उसके लिए एक साधारण सी बात बता देना कोई कठिन कार्य नहीं है। इसके पश्चात् सब लोग अपने २ घर चले गए। उपर्युक्त स्त्री पुरुष तो स्वामी जी को साक्षात् परमात्मा ही मानने लगे अतः वे सदैव उनके दर्शनार्थ आया करते थे। बहुत दिन बीतने पर उक्त स्त्री के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़ी प्रसन्नता हुई। स्त्री को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह उस लड़के को स्वामी जी के पास ले आई और कहने लगी कि "यह पुत्र आपका है अतः मैं इसे आप की सेवार्थ अर्पण करती हूं"।

स्वामी जी ने बहुत कुछ कहा कि "मुझे इस उपाधि को क्या करना है" किन्तु उस स्त्री ने एक न मानी अन्त में स्वामी जी को कहना पड़ा कि "अच्छा यज्ञोपवीत होने के पश्चात् ले आना"

इसके पश्चात् यह स्त्री पुरुष दोनों स्वामी जी के दर्शन

करने आते रहे और स्वामी जी भी अपनी तपश्चर्य्या बढ़ाते रहे।

एक दिवस पंचवटी में भगवान श्री रामचन्द्र जी के जीवन चरित्र रामायण की कथा होती थी। समर्थ आदि बहुत से सज्जन उपस्थित थे। पढ़ते २ हनूमान जी के लंका जाने का प्रसंग आया और कहा गया कि हनुमान जी लंका में पहले पहल कन्हेर के पेड़ पर बैठे थे। यहां पर प्रश्न उठा कि कन्हेर के फूल कैसे थे ? अर्थात् श्वेत थे या लाल ? सब लोग प्रश्न सुनकर स्तब्ध रह गए किन्तु समर्थ ने तत्काल "श्वेत थे" ऐसा उत्तर दे दिया। इस पर पुनः किसी ने कहा कि एक नाथ जी ने तो बतलाया है कि हनुमान जी लंका में पहिले एक पीपल के वृक्ष पर बैठे थे और यहाँ पर कन्हेर पर बैठा लिखा है। इन दोनों में कौन सा लेख ठीक है। स्वामी जी ने कहा कि दोनों ही ठीक हैं। पहिले हनुमान जी कन्हेर पर गए तदुपरान्त पीपल पर गए। पुनः प्रश्न हुआ कि पुष्प श्वेत क्यों थे संभव है कि लाल हों जैसा कि प्रायः पुरुष कहते हैं। इसपर स्वामी जी ने बतलाया कि रावण शैव था अतः उसकी वाटिका में लाल अर्थात् रक्त वर्ण के पुष्प नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त सम्भव है कि हनुमान जी को पुष्प लाल ही दीख पड़े हों क्योंकि उस समय उनकी आंखें क्रोधवश अवश्य ही लाल हो रही होंगी ? किन्तु फूल श्वेत ही होने चाहिये क्योंकि रावण पक्का शैव था।

स्वामी जी की विचार शक्ति देखकर लोग स्तब्ध रह गये इसी प्रकार तपश्चर्य्या करते २ स्वामी जी को बहुत काल बीत गया।

सज्जनो ! निस्सन्देह जो मनुष्य किसी विषय में संसार

पर विजय करना चाहता है उसके लिए परमावश्यक है कि सब से पहिले कठिन तपश्चर्य्या करके वह अपने मन पर विजय प्राप्त करे। इस प्रकार जब तपस्या करते २ स्वामी जी को निश्चय हो गया कि वे अब कठिन से कठिन कष्टों को सहन कर सकते हैं तब उन्होंने जगदुद्धार का कार्य करने से पहले संसार की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये पृथ्वी का कुछ पर्यटन करने की आवश्यकता अनुभव की।

निसन्देह ! संसार में या देश में काम करने वालों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे संसार या अपने देश की यथार्थ स्थिति को जान लें और देश की स्थिति जानने के लिए देश में घूमना ही एक मात्र साधन है। दान देने का भाव सदैव या परोक्ष में इतना प्रबल नहीं होता जितना कि एक दीन मनुष्य को देखने पर उत्पन्न होता है। परोपकार का भाव उन मनुष्यों में कभी नहीं देखा जा सकता जिन्हों ने लंगड़े लूले अंधे और रोगी देखे ही नहीं और इन्हें देखने पर पाषाण हृदय भी पसीज जाता है। सारांश यह है कि देश के प्रति उपकार करने का सच्चा और अटल भाव तबही उदय होगा। जब कि कार्य करने की इच्छा करनेवाला महापुरुष देश की यथार्थ स्थिति को अपनी आंखों से देख ले। कितना ऊंचा है यह भाव ? ऐसे मनुष्य कितने हैं जो कार्य करने के पहले देश दशा को अनुभव करते हैं ? अहो ! आज तो अनेक समाज और सभाओं में नाम लिखाने मात्र ही से मनुष्य उपदेशक बन जाता है।

स्वामी जी अपने में इस त्रुटि को अनुभव करके मनही मन उसकी पूर्ति करने की चिन्ता करने लगे।

इतने में पूर्वोक्त स्त्री के ६ बालक और उत्पन्न हुये और

उसका वह पहला बच्चा भी बड़ा हो गया।

यज्ञोपवीत कराने के पश्चात् वह स्त्री नियमानुसार उस बालक को स्वामी जी के पास ले आई। स्वामी जी ने उसे अपने समीप रख लिया और "उद्धव" नाम रक्खा।

कुछ काल पश्चात् स्वामी जी को यहां रहते और तपश्चर्य्या करते पूर्ण १२ वर्ष हो गये। इस प्रकार योग के लिए आवश्यक एक अच्छे काल को पूर्ण करके स्वामी जी ने पर्य्यटन करने का निश्चय किया। कुछ समय पश्चात् आपने उद्धव गोसावी को उस मन्दिर में उपासना करने के लिए छोड़ दिया और आप पैरों में पादुका, हाथ में माला, कांख में कुबड़ी और तूंबा, शिर पर टोपी और शरीर पर कफ़नी धारण करके शाके १५५४ में देश पर्य्यटन के लिए निकल पड़े।

षष्ठमोऽध्यायः।
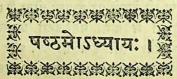
देश पर्यटन

"मेरा भूत तो केवल एक परमात्मा है।"

यहां से चल कर अनेक ग्राम और नगरों में होते हुए स्वामी जी काशी में पहुंचे। सब से पहले आपने गंगा स्नान किया और तदनन्तर विश्वनाथ जी के मन्दिर का दर्शन करने के लिए चल दिये। यहाँ पर कुछ ब्राह्मण रुद्राभिषेक कर रहे थे स्वतः उन्होंने स्वामी जी को ब्राह्मणेतर सन्यासी समझ कर लिंग के समीप जाने नहीं दिया। स्वामी जी ने ब्राह्मणों से कुछ नहीं कहा और उसी

स्थान पर खड़े होकर परमात्मा और ब्राह्मणों की स्तुति करने लगे। तदनन्तर वहीं से लौट पड़े। यह देख कर ब्राह्मणों को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने समझ लिया कि स्वामी जी कोई साधारण सन्यासी नहीं हैं। ब्राह्मणों को अपने इस कृत्य पर इतना दुःख हुआ कि वे चिन्तान्ध होगये और रुद्राभिषेक करना कठिन हो गया। अन्त में वे दौड़ कर स्वामी जी को लिवा लाये और उनसे अपने दुष्ट कर्म के लिए क्षमा प्रार्थना की। इसके पश्चात् समर्थ कुछ दिन काशी में रहे।

काशी से चल कर स्वामी जी परम पवित्र अयोध्यापुरी में पहुंचे। यहां रह कर स्वामी जी ने अयोध्या महात्म्य को श्रवण किया। तदनन्तर मथुरा, वृन्दाबन, गोकुल आदि तीर्थों में स्नान व सन्त समागम करते हुए द्वारका पहुंचे।

विविध स्थानों पर पहुंचते ही लोग स्वामी जी की शरण में आकर दीक्षित होने की प्रार्थना करते थे। स्वामी जी उन सब को उत्तम उपदेश देते थे और चलते समय प्रत्येक स्थान पर अपना एक मठ बना कर उसमें अपने किसी एक शिष्य को छोड़ कर आगे बढ़ते थे।

सज्जनों! किञ्चित विचार करके देखिये स्वामी जी कितना कठिन परिश्रम कर रहे हैं। अहो! एक ओर जहाँ स्वामी जी को सहस्रों कोस भूमि अपने पैरों से नापनी पड़ती है अथवा सैकड़ों कंटकाकीर्ण जंगलों को केवल अपनी कूबड़ी की रक्षा में पार करना पड़ता है वहीं हिन्दू धर्म के परम द्वेषी व एक मात्र विध्वंसक यवन राज्यकर्मचारियों के समय में अपने इस अत्याचार नाशक सम्प्रदाय के मठों को स्थापन करना भी कोई साधारण कर्म नहीं है।

मित्रो! देखो, एक ओर मूर्तियां तोड़ी जा रही हैं किन्तु

दूसरी ओर एक लंगोटीधारी बाल ब्रह्मचारी ब्राह्मण मूर्तियों का स्थापन कर रहा है। एक ओर टीकों को तलवार से पोंछा जा रहा है। धन्य ! हे सन्यासी ! तुम धन्य हो। हे ब्राह्मणों की लाज रखनेवाले ! तुम धन्य हो। हे हिन्दुत्व व आर्यत्व की रक्षा करने वाले ! तुम धन्य हो।

द्वारका में श्रीनाथ जी के दर्शन करके स्वामी जी प्रभास आदि तीर्थों में घूमते और पंजाब के नगरों में भ्रमण करते हुये श्रीनगर पहुंचे। यहां पर कुछ नानकपन्थी साधु रहते थे। इन साधुओं का यह नियम था कि उनके पास यदि कोई सन्यासी जाता था तो वे उससे कुछ वेदान्त विषयक प्रश्न करते थे। इतने पर भी यदि कोई उत्तर नहीं दे सकता था तो वे उसका अपमान करते थे किन्तु बड़े आदर सत्कार से उसे ठहराते थे। इसी नियमानुसार स्वामी जी से भी इन लोगों ने कुछ प्रश्न कर डाले किन्तु हमारे स्वामी जी कोई नक़ली सन्यासी तो थे ही नहीं। इन्होंने तो वेदान्त विषयक ग्रन्थों का भली भाँति अध्ययन किया था इसके अतिरिक्त आपका अनुभव भी कुछ कम नहीं था सारांश यह कि स्वामी जी ने सरल स्वभाव से इन प्रश्नों के उत्तर देने आरम्भ कर दिये। यथार्थ उत्तरों को सुनकर नानकपन्थी साधु बहुत प्रसन्न हुए तथा बड़े आदर सत्कार के साथ उन्होंने स्वामी जी को अपने यहां एक मास पर्य्यन्त ठहराया। मासान्त में जब स्वामी जी ने विदा चाही तब इन साधुओं ने मंत्र दान देने की प्रार्थना की किन्तु स्वामी जी ने कहा "आप लोगों का जो सिद्धान्त है वही मेरा भी सिद्धान्त है। नानक देव ने म्लेच्छों से भी राम राम कहलवा लिया इसी को तुम अपना लक्ष्य बनाओ ! मेरी शिक्षा भी यही है। मैं इससे अधिक कुछ नहीं सिखाता अतः आप लोगों को नया मंत्र

देने की आवश्यकता नहीं है। यह कह कर स्वामी जी हिमालय की ओर चल दिये।

पाठको! देखिये, विचारिये, स्वामी जी का क्या मंत्र है और वह कितना उत्तम है? अहो? धन्य हैं वे साधु जो ऐसा मंत्र संसार को देते हैं।

हिमालय में स्वामी जी ने बदरी नारायण, केदार नाथ और उत्तर मानस की यात्रा की। हिमालय के एक अत्युच्च शिखर पर पहुंच कर आप ने "श्वेत मारुति" के दर्शन किये इस स्थान पर शीताधिक्य के कारण कोई नहीं जा सकता। केवल शंकराचार्य गये थे। इस प्रकार उत्तर और पश्चिम की यात्रा पूर्ण करके, अनेक सुरम्य स्थानों में भ्रमण करते हुए स्वामी जी पूर्व की ओर प्रस्थित हुए।

पूर्व में यात्रा करते करते समर्थ जगन्नाथपुरी में पहुंचे। यहां पर एक पद्मनाभि नामक सुबोध ब्राह्मण आपकी शरण में आया। स्वामी जी ने यहां एक मठ बनाया और उसमें इस ब्राह्मण की योजना करके आप दक्षिण की ओर चल दिये।

जगन्नाथ जी से समुद्र के किनारे भ्रमण करते हुये आप दक्षिण में रामेश्वर पहुंचे। यहां से आप लंका की ओर चल दिये। यहां पहुंचने पर विभीषण* ने आप का स्वागत किया स्वामी जी यहां पर एक मास ठहरे और आदिरंग, मध्यरंग, अन्तरंग, श्री जनार्दन और दर्शसेन आदि तीर्थों में होते हुये और मठों की स्थापना करते हुये गोकर्ण महाबलेश्वर पहुंचे।

*कहीं कहीं ऐसा भी नियम था कि वहां के सब राजा एक ही नाम के होते थे यथा—मिथिला में "जनक"। सम्भव है यहां भी ऐसा ही हो।

यहां कुछ दिन रह कर समर्थ शेषाद्रि पर्वत पर पहुंचे और पुनः वेंकटेश, शैल्य मल्लिकार्जुन, बाल नरसिंह, पालक नरसिंह शचौटी वीरभद्र एवम् प्रसिद्ध पंचलिङ्गों के दर्शन करते हुए किष्किन्धा नगर में आये। यहां पर स्वामी जी ने पम्पासर, ऋष्यमूक पर्वत आदि स्थानों को देखा और पुनः श्री कार्तिक स्वामी के दर्शन करने चले गये। वहां से आप दक्षिण काशी को लौट आये। इसके पश्चात् पश्चिम मानस तीर्थों में होते एवम् श्री पंढरी नाथ जी के दर्शन करते हुये श्री अम्बकेश्वर पहुंचे और पुनः नासिक पंचवटी को लौट आये अर्थात् भारत की प्रदक्षिणा पूरी की।

समर्थ जी के यह भारत प्रदक्षिणा पूरे १२ वर्ष में समाप्त हुई और इतने समय में आपने संसार के प्रत्येक कष्ट का भली भांति अनुभव किया। अनेक प्राकृतिक दृश्यों को देखा और भली भांति सन्त समागम किया।

भारत की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् स्वामी जी ने गंगा स्नान किया और प्रार्थना की कि मैंने जो पर्य्यटन किया है सो सब परमात्मा की कृपा से किया है अतः वह सब परमात्मा ही का है।

अहा! कैसा उच्च भाव है। निस्संदेह। वही मनुष्य संसार में कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है जो कि कर्म तो करता है किन्तु कर्म में अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखता। आज हम में से ऐसे कितने सज्जन हैं जो ऐसा करते हैं। साधारण मनुष्यों की बात जाने दीजिये किन्तु उन सन्यासियों में देखिये जिनका कि यह उद्देश्य ही होना चाहिये। आज सन्यास धारण करने के पहले लोग समझ लेते हैं कि ऐसा करने से जनता उनका विशेष आदर करेगी। पागल

और मूर्ख होते हुए भी लोग उन्हें विद्वान समझेंगे। कटुवादी होते हुए भी लोग उनको सत्य वा स्पष्ट वक्ता समझेंगे। इस के अतिरिक्त आर्थिक लाभ भी होगा। इत्यादि। किन्तु मित्रो! यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो सच्चा सन्यासी वही है जोकि अपने लिये कुछ नहीं चाहता। जो कुछ चाहता है सो देश के लिये चाहता या धर्म रक्षा के निमित्त चाहता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है:—

अनाश्रितः कर्म फलं
कार्य्यं कर्म करोति यः
स सन्यासी च योगी च
न निरग्निर्न चाक्रियः।

अर्थात् जो मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म को फल की इच्छा न करते हुए करता है वही सच्चा सन्यासी है वही सच्चा योगी है न कि अक्रिय व अकर्मण्य। इसके साथ ही साथ अपने किए हुए शुभ कर्म को परमात्मा की कृपा से हुआ, ऐसा कहना भी कितना उच्च, उत्तम और अनुकरणीय भाव है। इस भाव का सर्वथा अभाव पाया जाता है। परमात्मा वह दिन भारतवर्ष के लिये शीघ्र लावे जब कि फिर एक ऐसे ही सच्चे सन्यासी के दर्शन हों और वह हमारा उद्धार करके कहे कि यह सब परमात्मा ही की कृपा का फल है।

पंचवटी में प्रदक्षिणा पूर्ण करके स्वामी जी टाकली गांव में आये और यहां उद्धव गोसावी से मिलते हुये पैठण पहुंचे पैठण पहुंच कर कुछ दिन समर्थ ने स्वामी एकनाथ की समाधि के समीप भजन गान में बिताये और पुनः गोदावरी प्रदक्षिणा के लिये चल पड़े।

मार्ग में स्वामी जी को माता और बन्धु का स्मरण आया अतः यह घर की ओर चल दिये।

पाठकों को स्मरण होगा कि स्वामी जी विवाह समय मण्डप से उठ कर भाग आये थे अतः यह बतलाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि इनके शोक में माता जी की क्या दशा हुई होगी। इतना होते हुये भी हमारी परमात्मा से प्रार्थना है कि ऐसा शोक भारतवर्ष में कम से कम दस माताओं को पुनः प्राप्त हो।

सुहृद सज्जनो! इस समय समर्थ को घर से निकले हुये कुछ ऊपर २४ वर्ष व्यतीत हो चुके किन्तु धन्य है माता का प्रेम कि राणुबाई ने अपनी दृष्टि को खोकर भी अद्यावधि पुत्र प्रत्यागमन की आशा को नहीं खोया।

जो कुछ हो समर्थ भ्रमण करते करते अपने गांव में आ पहुंचे और द्वार पर पहुंच कर "जय जय श्री रघुवीर समर्थ" कह कर भिक्षा माँगी।

भिक्षुक का शब्द सुनकर वृद्धामाता जी ने बहू (श्रेष्ठ की धर्मपत्नी) को भिक्षा देने की आज्ञा दी। माता जी की आज्ञा सुनकर समर्थ ने कहा।

भिक्षा लेकर चला जानेवाला आज का सन्यासी नहीं है।"

सन्यासी के शब्द को माता ने पहिचान लिया। अहो! जिसके पेट में समर्थ ९ मास पर्य्यन्त रहे और जिसने इनका १२ वर्ष की आयु पर्य्यन्त पालन पोषण किया उससे २४ वर्ष व्यतीत होने पर भी यह कैसे अज्ञात रह सकते थे।

पुत्र को पहचान कर माता ने कहा "क्या नारायण है?" माता के प्रश्न का उत्तर समथ ने "हां" शब्द से दिया और

समीप जाकर चरणों पर शिर रख दिया। इस समय जो आनन्द माता जी को प्राप्त हुआ उसका वर्णन यह निर्बल लेखक कैसे करे सो विदित नहीं। माता जी ने बड़े प्रेम से अपने नारायण को गले लगाया मस्तक सूंघा और उनके सिर पर हाथ फेरा। हाथ फेरने के पश्चात् माता जी ने कहा अरे नारायण तू तो अब बड़ा हो गया। क्या करूं मुझे तो अब कुछ दीखता ही नहीं। इस प्रकार कह कर माता जी रोने लगीं माता के दुःख को समर्थ नहीं देख सके अतः यह परमात्मा की प्रार्थना करते हुये माता के आनन्दाश्रुओं को अपने उन हाथों से पोछने लगे जिनसे कि संसार के एक भाग का दुःख दूर होना था। अहो ! जिन हाथों को परमात्मा ने भारत का कष्ट दूर करने का सामर्थ्य दे रक्खा है उनसे उसका कष्ट दूर क्यों न होगा जिसने कि उन हाथों को ६ मास पर्य्यन्त अपने उदर में रक्खा है। परमात्मा अपने एक ऐसे भक्त की प्रार्थना क्यों न सुनेगा जिसमें कि किसी के कष्ट देखने वाले सामर्थ्य का सर्वथा अभाव हो।

इसके अतिरिक्त माता ने कोई पाप नहीं किया था जिसके परिणाम में उनकी दृष्टि परमात्मा ने ले ली ऐसा कहा जाय प्रत्युत बल पूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने पूर्व जन्म में और इस जन्म में अवश्य ही अनेक पुण्य कार्य किये हैं तब तो समर्थ जैसा देशोद्धारक उनकी कुक्षि से उत्पन्न हुआ। ऐसी माता को परमात्मा में भी कष्ट देने की सामर्थ नहीं है यदि वह ऐसा करे तो कर्मका ह्रास हो जाय और लोग उसे अन्यायी कहने लगें। सारांश यह है कि माता की दृष्टि जो कि शोकाग्नि से भस्मप्रायहो गई थी प्रेम रूपी समुद्र के शीतल जलसे शान्त हो गई और अपने व भारतोद्धारक पुत्र

के पुण्य प्रताप से माता जी को पूर्ववत् उसी समय दीखने लगा। अपने में देखने की शक्ति आई देख कर भोली माता ने समझा कि नारायण कुछ भूत विद्या सीख आया है अतः वे इस प्रकार कहने लगीं:—

नारायण तू मुझको छोड़ गया। अब तू यह भूत विद्या किससे सीख आया ?"

मित्रो ! माता के प्रश्न का जो उत्तर समर्थ ने दिया उसका सार यह है—

"हे माता जी ! मैंने किसी भूत को सिद्ध नहीं किया। मेरा भूत तो केवल एक परमात्मा है।

सर्वां भूताचें हृदय । नाम त्याचे राम राय ।
रामदास नित्य गाय । तेंचिभूत गे माय ॥

वही परमात्मा जो कि सब के हृदयों में निवास करता है अर्थात् अन्तर्यामी है जिसे कि रमण करने वाला अर्थात् राम कहते हैं। हे माता जी मैं इसी भूत का दास रामदास हूं। यही मेरा भूत है। मैं इसी के यश का नित्य गान करता हूं।

सज्जनो ! स्वामी जी के इस बचन से भूत आदिकों का भी खंडन हो जाता है। अस्तु यह बातें हो ही रही थीं कि इतने में श्रेष्ठ भी आ पहुंचे। भाई को देखकर समर्थ चरणों में गिर पड़े। श्रेष्ठ ने भी इन्हें बड़े प्यार से गले लगाया। तदुपरान्त दोनों ने स्नान किया और सन्ध्योपासन करके भोजन किया ! सारांश यह है कि माता के आग्रह करने पर स्वामीजी यहां ठहर गये। एक दिन सब लोग बैठे हुये परस्पर बात चीत कर रहे थे कि समर्थ की विद्वतापूर्ण बातों को सुनकर माता जी अतिशय आनन्द को प्राप्त हुईं और कहने लगीं—"नारायण ! तू कुलात्चा उद्धार के लास" अर्थात् हे नारायण

तूने इस कुल का उद्धार किया। एक दिन सब लोग आत्म-निरूपण सम्बन्धी बात चीत कर रहे थे। एक स्थल पर माता जी को कुछ सन्देह हुआ। श्रेष्ठ ने बहुत कुछ समझाया किन्तु माता जी को सन्तोष नहीं हुआ। अन्त में माता जी ने हमारे समर्थ से उस पर व्याख्या करने के लिये कहा। माता जी की आज्ञा सुनकर समर्थ ने कहा "हे माता जी! क्या आप मेरी परीक्षा लेना चाहती हैं। इसके पश्चात् स्वामी जी ने माता जी के समक्ष उस व्याख्यान का वर्णन किया जिसको कि महामुनि कपिल ने अपनी माता देवहूती के समक्ष निवेदन किया था। समर्थ के मुख से आत्मबोध को सुनकर माता जी बहुत प्रसन्न हुईं। इसके कुछ दिन पश्चात् स्वामी रामदास जी माता जी और भाई जी से बिदा लेकर गोदावरी प्रदक्षिणा के लिये चल दिये। समुद्र सङ्गम पर गोदावरी की सात धारायें हो गई हैं स्वामी जी ने प्रत्येक की परिक्रमा की। यहां से गोदावरी के उद्गम स्थान पर होते हुये आप पंचवटीके दक्षिण की ओर पहुंचे अर्थात् गोदावरी प्रदक्षिणा पूर्ण की।

सप्तमोऽध्यायः।
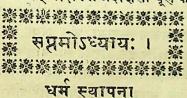
धर्म स्थापना

देव गौ और ब्राह्मणों की रक्षा करो।

यहां से आप टाकली चले आये और ईश्वर भजन में अपने दिन बिताने लगे। कुछ दिन पश्चात् देश दशा, भारत माता अथवा परम पिता

परमात्मा ने पुनः प्रेरणा की कि उद्यत हो जाओ ! अब कर्म करने का समय होगया । सिसौदिया कुल में शिव नामक राजा का जन्म हो गया । उनकी सहायता से धर्म स्थापन करो । सारांश यह है कि स्वामी जी इसी समय शाके १५५८ के वैषाख मास में जनोद्धार व धर्म स्थापना का कार्य करने के लिये दक्षिण की ओर चल दिये । सब से पहले आप महाबले-श्वर गये और चार मास पर्यन्त यहीं रहे । यहां आपने अपना मठ स्थापन करके अपना सम्प्रदाय बढ़ाया और अनेक लोगों को भजन मार्ग में लगाया । अनन्त भट्ट दिवाकर भट्ट आदि कई विद्वान् यहां आप के शिष्य बने । यहां से चल कर आप वांई क्षेत्र (सितारा प्रान्त) में पहुंचे और कृष्णा नदी के तट पर एक पीपल के वृक्ष के नींचे रहने लगे । यहां भी आपने अपना मठ स्थापन किया और बहुत से विद्वानों को दीक्षा दी यहां पर आपका शिष्य समुदाय बहुत बढ़ा । कुछ दिन पश्चात् आप यहां से माहुली चले आये और एक हनुमान जी के मन्दिर में रहने लगे । माहुली में आप के दर्शनार्थ बहुत से साधु सन्त आया जाया करते थे और धर्म चर्चा किया करते थे । एक बार रंगनाथ स्वामी और जयराम स्वामी भी आप के समीप पधारे और इस भेट के पश्चात् स्वामी जी का इन दोनों से बड़ा गाढ़ा प्रेम हो गया । कुछ दिन पश्चात् स्वामी तुकाराम जी भी आप के समीप पधारे और एक दूसरे से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । यहां पर समर्थ का शिष्य सम्प्र-दाय बहुत बढ़ा और यहीं पर आप को लोग "समर्थ" कहने लगे ।

कुछ दिन माहुली में निवास करके आप कहाड़ को चले आये कहाड़ में कुछ दिन निवास करके आपने मठ स्थापन किया

और बाजीपंत को यहां का मठाधीश बनाकर आप चाफल चले आये।

इस समय शिवाजी की सत्ता महाराष्ट्र देश में फैलने लगी थी। इन्हों ने रायगढ़ पर अपना अधिकार जमा लिया और प्रतापगढ़ में दुर्ग बनाकर जगदम्बा देवी की स्थापना की पूना से लेकर नासिक करवीर पर्य्यन्त आपने नगर आदि पर अधिकार कर लिया था। चाफल में भी शिवा जी की ओर से नरसोमलनाथ नामक एक राज्य कर्मचारी थे, इन्हों ने स्वामी जी से दीक्षा ली और उनके लिये एक मठ भी बनवा दिया यहीं पर भान जी जोशी नामक एक सज्जन ने भी स्वामी जी से दीक्षा ली इनको स्वामी जी ने यहां का मठाधीश बनादिया इसके पश्चात् स्वामी जी के सहस्त्रों शिष्य होगये। इनमें से बहुत से विविध मठों में रहते थे। और बहुत से स्वामी जी के साथ रहा करते थे।

चाफल से चलकर स्वामी जी श्री क्षेत्र करवीर पहुंचे और श्रीमती अम्बाबाई के देवालय मे ठहरे। इस समय यहां पाराज़ीपंत नामक एक सज्जन शिवाजी की ओर से प्रधान राज्ञ कर्मचारी थे।

पाराजीपंत बड़े सज्जन पुरुष थे और इसी लिये सब लोग इनको बरबाजीपंत कह कर सम्बोधन किया करते थे। बरबाजी पंत ने स्वामी जी की ज्ञानभक्ति और वैराग्य देखकर उनसे दीक्षा लेने का निश्चयकिया। अन्त में एक दिन नियत किया गया और पूजा आदि की सामग्री का प्रबन्ध किया जाने लगा। बरबाजीपंत के घर में अम्बा जी नामक एक लड़का था और यह बड़े प्रेम से प्रत्येक कार्य में योग दे रहा था। स्वामी जी इस प्रेम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और

समीप बुलाकर इस प्रकार पूछने लगे । क्या तुम कुछ लिख भी सकते हो ?

उत्तर में बालक ने "हां" कहा ।

बालक के हां कहने पर स्वामी जी ने परीक्षार्थ ११ सवैये बोले बच्चे ने सब सवैयों को बड़ी उत्तमता से लिख दिया स्वामी जी बालक की पटुता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बरबाजीपंत से बोले ऐसे बालक की मेरे ग्रन्थ लिखने के लिये मुझे आवश्यकता है । क्या आप मुझे इसको दे सकते हैं "? स्वामीजी की बात सुनकर बरबाजीपंत ने हाथ जोड़कर स्वामी जी से कहा—यह बालक मेरा नहीं है । मेरी एक विधवा बहिन है। उसके दो बच्चे हैं और आजकल मेरेही समीप रहते हैं अतएव इस बालक की स्वामिनी वही है । इसके पश्चात् समर्थ ने सबको दीक्षित किया । भोजनों के पश्चात् स्वामी जी ने रखमाबाई को बुलाकर कहा अम्बाजी की मुझे आवश्यकता है । उसे मुझे दो । समर्थ जी की ऐसी इच्छा देखकर रखमाबाई ने कहा अम्बाजी को तो आप ले जाना चाहते हैं किन्तु मुझे क्या आप छोड़ जाना चाहते हैं । अहो ! धन्य हैं वे माताएं जो अपने हृदय के टुकड़ों को सच्चे सन्यासियों की सेवा में अर्पण कर देती हैं और धन्य हैं वे सच्चे सन्यासी जिनके सच्चे त्याग का लोगों पर इतना प्रभाव पड़ता है । अन्त में स्वामी जी रखमाबाई अम्बाजी पंत और उसके छोटे भाई दत्तोबा को लेते हुये मसूर चले आये ।

मसूर पहुंच कर शाके १५६७ पार्थिव नाम सम्वत्सर में स्वामी जी एक पटवारी के यहां उत्सव में सम्मिलित हुए । इसी स्थान पर अम्बा जी एक वृक्ष की शाखा काटते काटते नीचे एक कूप में जा पड़े किन्तु निकालने पर देखा गया कि

उनको कोई आघात् नहीं पहुंचा। स्वामी जी ने जब पूछा कि चित्त कैसा है तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक कल्याण है। ऐसा कहा इसी दिन से स्वामी जी अम्बा जी को कल्याण कहने लगे।

कुछ काल पश्चात् एक सतीबाई नाम्नी स्त्री स्वामी जी के दर्शनार्थ आई इसके साथ इसी का एक भिकोबा नामक पुत्र भी था। स्त्री ने स्वामी जी को प्रणाम किया किन्तु लड़का यों ही खड़ा रहा। लड़के की असभ्यता देख कर माता को बुरा लगा और उसने कहा "क्या मूर्ख के समान खड़ा है। नमस्कार कर और आज्ञा मांग"। माता की बात सुनकर भिकोबा ने कहा "यदि मैं नमस्कार करूं और आज्ञा पालन करूं तो स्वामी मुझे क्या देंगे"? बालक की विचित्र बात सुनकर समर्थ ने उसे अपने पास बुला लिया और कहा "हमारी आज्ञा पालन करो तो हम तुम्हें ऐसी चीज़ देंगे जिसकी कि तुम्हें बड़ी भारी आवश्यकता है"।

स्वामी जी की बात सुनकर भिकोबा ने कहा "अच्छा तो आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूं"? लड़के की बात सुनकर स्वामी जी ने कहा "इस समीपस्थ कूप में गिर पड़ो"।

अहो! स्वामी जी की बात सुनकर होनहार लड़का धड़ाम से कूप में कूद पड़ा। सब लोग चकित रह गये। अन्त में वह निकाल लिया गया। अब स्वामी जी ने उसको उत्तम उपदेश करके अपना शिष्य बना लिया। आगे चलकर जिस प्रकार स्वामी जी के शिष्यों में उद्धव गोसावी और कल्याण गोसावी प्रसिद्ध पुरुष हुये उसी प्रकार भिकोबा गोसावी भी एक अत्यन्त प्रतिष्ठित पुरुष समझे जाते थे।

यहां कुछ दिन रह कर स्वामी जी चाफल आये और

शाके १५७० (सन् १६४८ ई०) में आप ने यहां एक मठ निर्माण करके उसमें रामचन्द्र जी की मूर्ति स्थापित की। समर्थ के सहस्रों शिष्य और महन्त इसी मठ में रहा करते थे। और नाना प्रकार से श्रीराम का उत्सव करके धर्म का प्रचार करते रहते थे। स्वामी जी अपनी इच्छानुसार कभी मठ में रहते, कभी बन पर्वतों की गुफ़ाओं में रहते और कभी मुख्य मुख्य शिष्यों को साथ लेकर महाराष्ट्र प्रान्त में धर्म प्रचार करते फिरते थे।

इसी अवसर में अर्थात् जब कि स्वामी जी धर्म प्रचार की धूम मचा कर महाराष्ट्र प्रान्त के मनुष्यों में एक नये जीवन का सञ्चार कर रहे थे एक दिन महाराज शिवाजी रायगढ़ से निकल कर महाड़ गये और एक राज्याधिकारी के घर पर कीर्तन में सम्मिलित हुए।

कथा के अन्तर्गत एक स्थान पर प्रसङ्गवश यह भी वर्णित किया गया कि सद्गुरू मिले बिना मोक्ष नहीं प्राप्त होता।

शिवा जी को यह बात लग गई और आप उसी समय से इस विचार में पड़ गये कि किस को अपना गुरू बनाना चाहिये। बहुत सोच विचार के पश्चात् आप ने निश्चय किया कि श्री स्वामी रामदास जी समर्थ को अपना गुरू बनाना चाहिये। यह निश्चय करके महाराज शिवाजी ने एक दिन स्वामी जी के दर्शनों के निमित्त चाफल की यात्रा की किन्तु स्वामी जी का दर्शन न हुआ। यहाँ से शिवा जी कोंड़वण की गढ़ी में गये किन्तु वहां भी स्वामी जी के दर्शन नहीं हुए अतः महाराज हताश हो कर प्रतापगढ़ लौट आये। स्वामी जी के दर्शनों की शिवाजी को इतनी लालसा लगी कि स्वप्न में भी उनको समर्थ ही समर्थ दीख पड़ते थे। अन्त में अत्यन्त

उत्सुक होकर स्वामी जी को खोजने और बुलाने के लिये शिवा जी ने अपने कर्मचारी भेजे।

शिवा जी दर्शनों के लिये अत्यंत उत्सुक हो रहे हैं एवम् उन्होंने बुलाने के लिये अपने कर्मचारी भी भेजे हैं यह समाचार पाकर स्वामी जी ने शिवाजी को यह पत्र लिखा।

निश्चयाचा महामेरु, बहुत जनांसी आधारु।
अखंड स्थितीचा निर्धार, श्री मंत योगी ॥ १ ॥
परोपकारचिया राशी, उदंड घडती जयासी।
तयाचे गुण महत्वासी, तुलणा कैंची ॥ २ ॥
नरपति हय पति गजपति, गड़पति भूपति जलपति।
पुरंदर आणि छत्रपति, शक्ति पृष्ठ भागीं ॥ ३ ॥
यशवंत कीर्त्तिवंत, सामर्थ्यवंत वरदवंत।
पुण्यवंत नीति वंत, जाणता राजा ॥ ४ ॥
आचार शील विचार शील, दान शील धर्म शील।
सर्वग्यपणें सुशील, सकलां ठायीं ॥ ५ ॥
धीर उदार गंभीर, शूर क्रियेसी तत्पर।
सावधपणें नृपवर, तुच्छ केले ॥ ६ ॥
तीर्थ क्षेत्रें मोडली, ब्राह्मण स्थानें भ्रष्ट कालीं।
सकल पृथ्वी आंदोलली, धर्म गेला ॥ ७ ॥
देव धर्म गो ब्राह्मण, करावया संरक्षण।
हृदयस्थ जाहला नारायण, प्रेरणा केली ॥ ८ ॥
उदंड पंडित पुराणिक, कवीश्वर याज्ञिक वैदिक।
धूर्त तार्किक सभा नायक, तुमचा ठायीं ॥ ९ ॥
या भूमंडलाच्या ठायीं, धर्म रक्ष ऐसा नाहीं।
महाराष्ट्र धर्म राहिला काहीं, तुम्हा करितां ॥१०॥
आणखी ही धर्म कृत्यें चालती, आश्रित होऊन कित्येक राहती
धन्य धन्य तुमची कीर्ति, विश्वीं विस्तारिली ॥११॥
कित्येक दुष्ट संहारिले, कित्येकांस धाके सुटले।

कित्येकांस आश्रय काले, शिव कल्याण राजा ॥१२॥
तुमचे देशी वास्तव्य केले, परन्तु वर्तमान नाहीं घेतलें ।
ऋणानुबंधे विस्मरण कालें, काय नेरगूं ॥१३॥
सर्वज्ञ मंडली धर्म मूर्ति, सांगणें काय तुम्हां प्रति ।
धर्म स्थापनेची कीर्ति, सांभाल ही पाहिजे ॥१४॥
उदंड राज कारण तटलें, तेणें चित्त विभाग लें ।
प्रसंग नसतां लिहिलें, क्षमा केली पाहिजे ॥१५॥

भाषार्थ

हे राजन्! निश्चय रूपी महामेर, और बहुत जनों के आधार तथाच अखंड स्थिति के निर्धारण करने वाले श्रीमंत होते हैं। १। जो परोपकार की राशि हैं उनके गुण अथवा महत्व की कौन तुलना कर सकता है। २। नरपति, हयपति, गजपति, जलपति, भूपति, छत्रपति और इन्द्र यह पृथ्वी पर शक्तियां हैं। ३। राजा को यशस्वी, कीर्तिमान, सामर्थ्यवान, पुण्यशाली और नीतिज्ञ होना चाहिये।४। उसको सर्वथा सर्वत्र सदाचारी विचार शील, दानशील, धर्मिष्ठ और सुशील होना चाहिये। ५। राजा को धीर धारी, उदार, गंभीर शूर और क्रिया में तत्पर होना चाहिये किन्तु आज कल ऐसा नहीं है॥ ६॥

इस कारण तीर्थ और क्षेत्र नष्ट हो गये, ब्राह्मण स्थान भ्रष्ट हो गये सकल पृथ्वी में उपद्रव हो कर धर्म का लोप हो गया है॥७॥ देवता, धर्म, गौ और ब्राह्मण की रक्षा करने के निमित्त परमात्मा ने तुम्हारे हृदय में प्रेरणा की है॥८॥ पौराणिक पंडित वा कवीश्वर और धूर्त वा तार्किक सभानायक अब भी तुम्हारे पास हैं॥९॥ इस समय भूमंडल में ऐसा कोई नहीं है जो धर्म की रक्षा करे, महाराष्ट्र धर्म तुम्हारेही कारण

बचा है ॥१०॥ और भी तुम्हारे हाथों से बहुत सा धर्म कार्य होगा, बहुत से लोग तुम्हारे आश्रय में रहेंगे अतः तुम धन्य हो, तुम्हारी कीर्त्ति फैल रही है ॥११॥ बहुत से दुष्टों का तुमने संहार किया और बहुत लोग तुमसे डरते हैं, बहुतों को तुम से आश्रय मिला ॥१२॥ तुम्हारे देश में रहता हूं किन्तु बहुत से कारणों से अद्यावधि साक्षात्कार नहीं हुआ ॥१३॥ तुम सब जानते हो, धर्मिष्ठ हो इसलिये विशेष कहने की आवश्यकता नहीं, केवल इतना ही पर्य्याप्त है कि अब तुमको धर्म स्थापना करनी चाहिये ॥१४॥ यह सत्य है कि अधिक राज कार्य भार के कारण तुम्हारी चित्तवृत्ति व्यग्र होगी किन्तु प्रत्येक कार्य को सोच विचार कर करना चाहिये, प्रसंग वश स्पष्ट लिखा है अतः क्षन्तव्य है।

प्रिय उन्नति शील सज्जनों! वस्तुतः पत्र बड़ा ही महत्व पूर्ण है, इस में स्वामी जी ने बहुत कुछ लिख दिया है और विशेषतः "देव धर्म गो ब्राह्मण करावया संरक्षण" यह पद तो अत्यंत हृदय ग्राही है, अहो! जब हमारे जैसे निर्बल आत्माओं पर भी यह कुछ न कुछ प्रभाव डालता है तो महाराजा शिवा जी के महान आत्मा पर इसने क्यों न विचित्र प्रभाव जमाया होगा। अस्तु! शिष्य, पत्र लेकर शिवा जी के समीप पहुंचा महाराज पत्र को देख कर अत्यंत प्रसन्न हुए। शिवाजी ने शिष्य का बड़ा आदर सत्कार किया और पूछा कि स्वामी जी आज कल कहां है? विदित हुआ कि समर्थ चाफल में है। शिष्य के विदा होते ही शिवाजी भी स्वामी रामदास जी के दर्शनार्थ चल दिये। यहां आने पर विदित हुआ किस्वामी जी शिंगण वाड़ी में हैं। सूचनानुसार शिवा जी शिंगण वाडी के लिये प्रस्थित हुए किन्तु समर्थ यहां भी न मिले और पता

लगा कि खाड़ी के बाग़ में हैं।

इसी उद्यान में स्वामीजी का उत्तर कल्याण स्वामी द्वारा प्राप्त हुआ। पत्र देखते ही समर्थ जी ने कहा "विदित होता है शिवाजी अति शीघ्र आने की इच्छा रखते हैं, सम्भव है आज ही आजांय"।

इस समय स्वामी रामदास जी एक गूलर के वृक्ष के नीचे बैठे हुए "दास बोध लिख रहे थे। कुछ समय पश्चात् दिवाकर भट्ट और शिवाजी आते दिखाई दिये। देखते ही स्वामी जी ने कल्याण" से कहा "देखो कोई आते हैं"। कल्याण ने कहा "दिवाकर भट्ट जान पड़ते हैं"।

इतने में दिवाकर जी आगये। स्वामी जी ने आते ही पूछा "क्यों कैसे आये" उत्तर में दिवाकर जी ने सूचित किया महाराज शिवाजी आए हैं।

इतने में शिवा जी भी आ पहुंचे। आते ही नारियल भेंट दे कर साष्टांग नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

बैठने की आज्ञा दे कर समर्थ ने कहा "पत्र और तुम दोनों साथ ही साथ आये। बड़ी शीघ्रता की"।

इसके पश्चात् शिवा जी ने अनुग्रह प्रसाद (मंत्र) देने की प्रार्थना की। कल्याण ने समर्थन किया। सारांश यह कि इसी उद्यान में शाके १५७१ विकारी नाम संवत्सर वैशाख शुक्ल ८ को स्वामी जी ने शिवा जी को मंत्रोपदेश किया और प्रसाद में एक नारियल, मुट्ठीभर मृत्तिका (मिट्टी) दो मुट्ठी लीद और चार मुट्ठी खड़े (पत्थर) दिये। इसके पश्चात् स्वामी जी ने शिवाजी को कुछ प्राचीन वेदान्त विषयक उपदेश किया। इस उपदेश से प्रभावित हो कर शिवाजी ने सदैव स्वामी जी के

समीप ही रहने की इच्छा प्रकट की किन्तु इस सम्बन्ध में जो स्वामी जी ने कहा वह भारत वर्ष के इतिहास में सुवर्ण अक्षर की भांति चमकता रहेगा और आवश्यक है कि प्रत्येक क्षत्री इस उपदेश को अपने हृदय पटल पर खचित कर ले। स्वामी जी ने कहा "तुम्हारा मुख्य धर्म राज्य स्थापन करके धर्म स्थापन करना और देव ब्राह्मणों की सेवा करना है। इसी से राजा को मोक्ष प्राप्त होता है। शिवाजी इस आज्ञा को सुनकर घर में परम संतुष्ट हुए। इसके पश्चात् शिवाजी के साथियों ने भी दीक्षा ली। तदनन्तर सब लोग स्वामी जी की आज्ञानुसार चाफल चले आये। दूसरे दिन समर्थ भी यहीं आगये।

एक दिन सब लोग बैठे हुये थे और स्वामी जी कुछ उपदेश कर रहे थे। उसी समय विधर्मियों का कुछ प्रसंग आया तब स्वामी जी ने कहा "म्लेच्छों का निवारण शिवा के हाथ से होगा।" इसके पश्चात् सभा विसर्जन की गई। दूसरे दिन एकत्रित होने पर शिवाजी ने प्रार्थना की कि नित्य दर्शन होने चाहिये इस पर स्वामी जी ने हंस कर उत्तर दिया "हे शिव ! मैं अरण्य वासी हूं। मुझ से एक स्थान पर ठहरना भी नहीं होता अतः यह नियम निभ नहीं सकता। तुम माता जी को ही तीर्थ समझो। उन्हीं की पूजा करो। उन्हीं को नैवेद्य अर्पण करके प्रसाद ग्रहण किया करो"।

अहो ! कैसी उत्तम शिक्षा है। शिवा जी इसे सुनकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। इसके पश्चात् महाराज प्रतापगढ़ आये और सब वृत्तान्त अपनी माता जी से कहा। मिट्टी, लीद और खड़े (पत्थरों) का समाचार सुन कर माता जी ने पूछा "शिव ? इससे तुम क्या समझे ?"

शिवा जी ने उत्तर दिया "मिट्टी से पृथ्वी ग्रहण करनी

चाहिये, लीद से महान ऐश्वर्य्य ग्रहण करना चाहिये और खड़े से प्रयोजन अनेक दुर्गों से है"।

यथार्थ उत्तर सुन कर माता जी बहुत प्रसन्न हुईं। इस समय शिवा जी का वय केवल २२ वर्ष का था।

शिवा जी के जाने के पश्चात् एक महान विद्वान वामन शास्त्री ने स्वामी जी से दीक्षा ली। वामन शास्त्री को दीक्षा देकर स्वामी जी दक्षिण हैदराबाद की ओर चल दिये। यहाँ पर भाण नगर में आप को भेंट एक परम प्रसिद्ध साधु केशव स्वामी से हुई। केशव स्वामी ने समर्थ को बड़े आदर पूर्वक अपने यहां ठहराया।

इस समय संत मंडल में निम्न लिखित पांच साधु परम प्रसिद्ध थे और यह पंचायतन नाम से प्रख्यात थे। केशव स्वामी भी इनमें से एक थे।

१—राम दास स्वामी समर्थ—परली
२—जयराम स्वामी—बड़ गाँव
३—रंगनाथ स्वामी—निगाड़ी
४—श्री आनन्द मूर्त्ति—ब्रह्मबाल
५—केशव स्वामी—भाण नगर

केशव स्वामी से मिल कर स्वामी जी पुनः चाफल लौट आये।

एक समय अषाढ़ी एकादशी को पंढरी यात्रा के लिये सब लोग उद्यत हुये। कुछ लोगों ने समर्थ स्वामी रामदास जी से भी पंढरी चलने के लिये निवेदन किया किन्तु "वहाँ मेरे राम नहीं हैं अतः मैं वहां नहीं चल सकता" यह कह कर स्वामी जी ने टाल दिया। स्वामी जी का ऐसा उत्तर सुन कर एक ब्राह्मण इनके समीप आया और उसने भी पंढरी चलने

की प्रार्थना की। स्वामी जी के वही उत्तर देने पर वृद्ध ब्राह्मण ने कहा "आप महाज्ञानी होकर भी ऐसी बात कहते हैं इस से अधिक आश्चर्य्य और क्या हो सकता है" ?

क्या संसार में कोई स्थान सर्वत्र रमण करनेवाले राम से रहित हो सकता है ?

ब्राह्मण का उत्तर सुनकर स्वामी जी चुप हो गये और यात्रा के लिये प्रबंध करने की आज्ञा दी। पंढरी की यात्रा करके स्वामी जी पुनः शीघ्र ही चाफल लौट आये।

शाके १५७२ में एक समय महाराज शिवाजी के यहाँ गोमोतक के अत्यन्त मधुर और बड़े २ आम आये। उत्तम २ आमों को देख कर परम गुरू भक्त शिवा जी को समर्थ का स्मरण आया। स्मरण किये बहुत काल न हो पाया था कि "शिवबा दार उघड़" ऐसा शब्द सुन पड़ा। समर्थ के अतिरिक्त महाराज शिवा जी को शिवबा कोई नहीं कह सकता था अतः महाराज ने समझ लिया कि स्वामी जी आगये। इन्होंने उठ कर किवाड़ खोल दिये और समर्थ के अकस्मात् ही आजाने पर अत्यन्त आश्चर्य्यित हुये। भीतर प्रवेश करते ही महाराज और महारानी ने स्वामी जी के चरण स्पर्श किये और अपने को धन्य माना। इसके पश्चात् समर्थ की सेवा में आम अर्पण किये गये। आम खाने के पश्चात् कुछ और वार्तालाप हुआ और इसके अनन्तर स्वामी जी ने जाने की इच्छा प्रकट की। रात्रि अधिक होजाने के कारण महाराज शिवाजी ने रह जाने के लिये आग्रह किया किन्तु स्वामी जी ने स्वीकार न किया और चले आये।

इस वृत्त से विदित होता है कि स्वामी जी का आत्मा अत्यन्त निर्मल और दर्पण के समान स्वच्छ था। उन से

सम्बंधित प्रत्येक बातका उनको तत्काल पता लग जाता था।

एक समय महाराज को अवसरवश रामगढ़ी के समीप एक जङ्गल में जाना पड़ा। वहांसे दोपहर के समय शिवा जी समर्थ स्वामी रामदासजी के दर्शनों को चले गये। सौभाग्य-वश स्वामी जी के दर्शन हो गये। इस समय शिवा जी की कान्ति को कुछ मलिन देख कर समर्थ ने पूछा आज तुम उदास क्यों हो शिवा जी ने कहा "महाराज की कृपा से किसी बात की कमी नहीं है केवल कुछ प्यास लगी है कदाचित इस कारण से ऐसा जान पड़ता हो"

शिवा जी की बात सुन कर समर्थ ने अपने हाथवाली कुबड़ी से एक पत्थर एक ओर हटादिया और कहा"लो पानी पीलो। परमात्मा की दया से यहां पानी का अभाव नहीं है" सब लोगों ने पानी पिया। यह झरना अब तक कुबड़ी-तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है*और रामगढ़ी के पश्चिम में है।

एक वार शिवा जी पुनः समर्थ के दर्शन के निमित्त आये और इस समय उन्होंने एक मुख्य प्रार्थना यह की कि कोई ऐसी युक्ति निकाली जाय जिससे नित्य दर्शन होने की सम्भा-वना हा। इसी प्रसंग में शिवा जी ने यह भी प्रकट किया कि यदि आज्ञा हो तो परली के दुर्ग पर निवास का उत्तम प्रबंध कर दिया जाय। बहुत आग्रह करने पर स्वामी जी ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इस के पश्चात् शिवाजी के साथ समर्थ परली चले आये। यहां आकर शिवा जी ने स्वामी जी के लिये बड़े २ भवनों की नीव डलवाना आरम्भ कर दिया

*यद्यपि यह कोई चमत्कार नहीं है क्योंकि महातमा लोग बहुधा ऐसे ही स्थानों में रहा करते हैं तथापि अन्य मराठी जीवन चरित्रों में वर्णित है अतएव हमने भी लिख दिया है।

इस उपद्रव को देख कर स्वामी जी ने कहा " असा खर्च करण्याचे कारण नाहीं। आहमी संरक्षणाचा सर्व बंदोबस्त करितों " अर्थात् इतने व्ययकी आवश्यकता नहीं है। "मैं अपने संरक्षणका प्रबंध स्वयं कर लूंगा" ऐसा कहकर थोड़ेसे स्थान में रहने का प्रबंध स्वामी जी ने कर लिया किन्तु इतने पर भी शिवा जी ने सब दुर्ग स्वामी जी के आधीन कर दिया। यहां स्वामी जी से सम्बन्धित पुरुष ही स्वामी जी की आज्ञा से रह सक्ते थे। इस के पश्चात् शिवा जी ने दुर्ग का नाम " सज्जन-गढ़ " रखा।

यहां पर स्वामीजी शाके १५७२ में आकर रहे।

इसी सम्वत् अर्थात् शाके १५७२ में करवीर प्रान्त में हुकेरी के समीप शिवाजी ने एक सामनगढ़ नामका दुर्ग बनाने के विचार से बड़ा भारी काम आरम्भ किया। बहुत से लोग काम करते थे। सहस्रों मनुष्यों को काम करते देखकर शिवा जी के मनमें कुछ थोड़ी सी अहम्मन्यता प्रकट हुई परमात्मा की कृपा से उसी समय समर्थ भी उसी स्थान पर आपहुंचे और शिवाजी के मुख की ओर देख कर चुप हो गये। गुरु को देखकर शिवाजी ने चरण स्पर्श किये और कहा आज अकस्मात् ही किस प्रकार आना हुआ ?

मित्रो ! यह वाक्य भी अहम्मन्यता का भाव लिये हुये है। शिष्य को गुरुके प्रति ऐसा कदापि न कहना चाहिये किन्तु यह ही कहना चाहिये कि मैं बड़ा भाग्यशाली हूं, परमात्मा की कृपा से श्री चरणों के अकस्मात् ही दर्शन हुये। सारांश यह कि मुख को देखकर स्वामी जी ने जो कुछ भाव ग्रहण किया था उस को शिवाजी के इस वाक्य ने पुष्ट कर दिया।

इस पर स्वामी जी ने पुनः एक उत्तर ऐसा दिया जिस में कि शिवा जी के भावों की परीक्षा करना अभीष्ठ था उन्होंने कहा तू श्रीमन्त है। सहस्रों मनुष्यों का पालन पोषण करता है अतएव तेरा कार्यालय देखने चला आया।

शिवाजी इससे भी कुछ न समझे और बोले "सब आप के आशीर्वाद का फल है" अर्थात् आपने स्वीकार कर लिया कि निस्संदेह! मैं सहस्रों मनुष्यों का पालक पोषक हूं। सज्जनो! किसी मनुष्य का यथार्थ भाव पहिचानने के लिये क्या इतनी बातें थोड़ी हैं और विशेषतः समर्थ जैसे महात्मा के लिये। सारांश यह कि शिवा जी के यथार्थ भाव को जो कि इस समय अहम्मन्यता से पूर्ण था समर्थ ने भली भांति पहिचान लिया और सरल स्वभाव से इधर उधर भ्रमण करने लगे। कुछ समय पश्चात् एक बड़ा पत्थर आप की दृष्टि पड़ा इसे देख कर समर्थ ने कहा "इस पत्थर को एक मनुष्य से अभी तुड़वा डालो"।

आज्ञा पातेही एक मनुष्य पत्थर तोड़ने के लिये बुलाया गया और उसने पत्थर तोड़ना आरम्भ किया किन्तु जब वह उसे तोड़ने लगा तब समर्थ ने कहा देखो। इस में बहुत धक्का न लगने पावे ठीक २ बीच से दो भाग करो। ऐसा ही किया गया। पत्थर के दो टुकड़े होने पर भीतर कुछ भाग पोला निकला * और उसमें से कुछ पानी और एक जीवित मेंढ़की निकल पड़ी।

मेंढ़की को देख कर शिवा जी बहुत आश्चर्यित हुए किन्तु स्वामी जी बोले "शिवबा! तुम्हारी योग्यता वस्तुतः बहुत

* पहाड़ों पर बहुत से पत्थर भीतर पोले और सांसदार होते हैं तथा वे एक विशेष समय को प्राप्त होकर स्वयमेव खुल भी जाते हैं।

बड़ी है। ऐसी लीला और किससे हो सक्ती है ? तुम्हारा महात्म अपार है" शिवा जी ने कहा " इस में मेरा क्या है ?" समर्थ ने कहा " क्यों नहीं ? तुम्हारे अतिरिक्त और कर्ता कौन है ? तुम्हारे बिना जीवों का पालन कौन करसक्ता है ?"

अब शिवा जी ने अपने अपराध को समझा और कहा "मुझ पामर से कुछ नहीं हो सक्ता। मुझे क्षमा कीजिये मैं बड़ा पापी हूं"।

शिवा जी के सावधान होने पर समर्थ प्रसन्न हुए और बोले "भैया तुम उस जगत्पिता परमात्मा अथवा सबके स्वामी के बड़े नौकर या सेवक हो। तुम्हारे हाथ से वह औरों को दिलाता है। इस पर हमको कभी अभिमान न करना चाहिये। तुम्हारे मन में ऐसे क्षुद्र विचार कदापि स्थान न पाने चाहिये।"

इस बात को सुन कर शिवा जी बहुत लज्जित हुए और चरणों में गिर कर बार २ क्षमा प्रार्थना की। अन्त में स्वामी जी ने कहा "मैं तो तुझे क्षमा करने ही आया हूं"।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने जाना चाहा किन्तु शिवा जी ने भोजन करने और दुर्ग देखने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने इसे स्वीकार किया और भोजन करने के पश्चात् दुर्ग को भली भांति देखा।

अनेक साथलोंपर दुर्ग निमार्ण सबंधी उपदेश दिया। इसके अनन्तर स्वामी जी सज्जनगढ़ चले आये। यहां पर आप का माता जी का पत्र प्राप्त हुआ। स्वामी जी ने इसे बड़े आदर से ग्रहण किया और लाने वाले का सत्कार कर के एवम् उतर दे कर विदा किया।

एक बार सदैवके नियमानुसार महाराज शिवाजी स्वामी रामदास जी के दर्शनों को आये और कहने लगे कि "स्वामी

जी मैं बारम्बार प्रार्थना कर चुका हूं कि मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा की जाय किन्तु शोक है कि आप मुझसे कोई सेवा नहीं लेते। क्या यह राज्य आप का नहीं है अथवा मैं सेवा करने के योग्य ही नहीं हूं"।

शिवा जी की प्रार्थना सुनकर स्वामी जी ने कहा "तुम राज्य की वृद्धि करते हो—म्लेच्छों का निवारण करते हो और देव ब्राम्हण की सेवा करके धर्म स्थापना करते हो यही मेरी सेवा है।" इस उत्तर से शिवा जी सन्तुष्ट न हुए और बोले "निस्संदेह ! यह भी आप ही की आज्ञानुसार होता है तथापि मुझ को कोई और सेवा सौंपी जाय" यह सुनकर समर्थ ने कहा "यदि मुझे निश्चय हो जाय कि तुम मेरा वचन पुरा करोगे तो मैं कुछ मांगू"। इसके उत्तर में महाराज ने कहा "यह देह ही आप की है पुनः आप को ऐसा संशय क्यों उत्पन्न हुआ ?" सन्तोष जनक उत्तर पाकर समर्थ ने कहा "मैं तुम से तीन बातें मांगता हूं, सुनो।"

१—तुम शिव भक्त हो अतः प्रतिवर्ष श्रावण मासमें शिवाराधना करके ब्राम्हणों को भोजन कराया करो।

२—प्रत्येक श्रावण मास में ब्राम्हणों को अच्छी दक्षिणा दिया करो।

३—तुम हिंदू हो किन्तु तुम्हारे राज्यमें बहुतसे लोग परस्पर में "जोहार" किया करते हैं। यह उचित नहीं है अतः नियम कर दो कि अंत्यज के अतिरिक्त कोई "जोहार" न करे। जोहार के स्थान पर सब "परस्पर राम २" कहा करें।

सज्जनों ! देखा, समर्थने अपने लिये क्या मांगा ? अहो धन्य है ऐसे साधूओं को जो संसार की सेवा ही में अपनी सेवा समझते हैं।

शिवा जी ने स्वामी जी की इस आज्ञा का पालन शाके १५७३ के श्रावण मास से करना आरम्भ किया। दश ग्रन्थ पढ़े हुए ब्राम्हणों को दश रुपये, और दश मन अन्न और पांच ग्रन्थ पढ़े हुये को पांच रुपये और पांच मन अन्न दक्षिणा में दिया जाने लगा। इसके पश्चात् जैसे २ शिवा जी का वैभव बढ़ता गया वैसे २ यह दक्षिणा भी बढती गई। जोहार के स्थान पर राम २ करने का नियम होगया।

स्वामी जी की पिछली बात से देश और अपनी मातृ-भाषाके प्रति उनका अलौकिक प्रेम झलकता है। ऐसे आचार्य्यों के शिष्य क्यों न देश का उद्धार करने वाले हों। इसी समय राज्य में प्रचलित यवन भाषा को दूर करके अपनी भाषा का प्रचार करने के लिये एक कोष बनाया था और उस में फ़ारसी शब्दों के पर्य्याय वाची हिंदी शब्द दिये गये थे। यथा

उद्यानंच भवेद्बागा=बाग़ को उद्यान कहते हैं।

एक समय समर्थ जी अपने सब शिष्यों के साथ चाफल से परली जारहे थे। चलते २ पाडली के समीप दोपहर हो गया अतः शिष्यों ने यहीं ठहर कर स्नान संध्या व भोजन करने के लिये प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार होने पर सब लोग अपने २ काम में लग गये। कोई स्नान करने लगा और कोई संध्या करने लगा। कितनेही गांव में भिक्षा मांगने चले गये।

जब ये लोग गांव में पहुंचे तब ग्रामाध्यक्ष ने इनको बहुत धमकाया और कहा कि "तुम लोग आधे नंगे घूमते हो, यह कौन सा धर्म है"? शिष्यों ने बतलाया भी कि हम समर्थ स्वामी रामदास जी के शिष्य हैं किन्तु इस भले आदमी ने एक न सुनी। अन्त में शिष्य लौट आए और सब वृत्तान्त स्वामी जी से निवेदन किया। वृत्त विदित करके समर्थ ने

अपने शिष्यों को तत्काल ग्राम छोड़ देने की आज्ञा दी।

आज्ञा पाते ही सब लोग अपना झोला झंगड़ उठाकर चल दिये किन्तु ग्राम छोड़े इन्हें अधिक समय भी न हो पाया था कि ग्राम में आग लग गई। अब तो बड़ा उपद्रव होने लगा। सब ने ग्रामाध्यक्ष को धिक्कारना आरम्भ किया और कहा कि तुम्हारी ही मूर्खता से यह उपद्रव हुआ है। तुमने उन ईश्वर भक्तों को वृथा कष्ट दिया इसी लिए यह बज्रपात हुआ है।

इसके पश्चात् सब लोग सन्यासियों को खोजने निकले। कुछ दूर पर ये लोग मिल गये। सबलोग समर्थ के पैरों पर लोटने लगे और क्षमा प्रार्थना करने लगे। अन्त में स्वामी जी ने कहा "जाओ! परमात्मा की प्रार्थना करो। भला होगा"। कुछ समय में अग्नि बुझ गई। यह वृत्तान्त शाके १५७३ फालगुण वदी त्रयोदशी का है।

परली पहुंचने पर स्वामी जी को माता जी का पत्र प्राप्त हुआ। इसमें लिखा था कि मिले हुए बहुत काल बीत गया अत: एक समय मिल जाओ। स्वामी जी ने इसके उत्तर में लिख दिया कि "शीघ्र ही आकर दर्शन करूंगा"।

एक बार शिवा जी के पिता शाहजी और माता जीजीबाई ने भी समर्थ के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। बहुत उत्सुक होने पर शिवा जी के साथ ये लोग दर्शन करने आए इस समय शिवाजी के पिता शाहजी ने निवेदन किया कि शिवा जी आप ही का है अतः सदैव आप इसकी रक्षा करते रहें। स्वामी जी ने उत्तर दिया "शिवबा पर परमात्मा की पूर्ण कृपा है"। इसी प्रकार की कुछ और बातचीत करके शाह जी अपने घर लौट आए।

एक दिन शिवाजी स्वामी जी के दर्शनों के लिए आए। अन्यान्य बातचीत के प्रसङ्ग में स्वामी जी ने प्रकट किया कि "मुझे माता जी के दर्शनार्थ "जांव" जाना है। बहुत दिन हो गये"। इस पर शिवा जी ने भी साथ चलने की इच्छा प्रकट की किन्तु स्वामी जी ने राज्य धर्म का उपदेश करके समय की आवश्यकता को दर्शाते हुए इन्हें साथ आने से रोक दिया आज्ञा मानकर शिवाजी रायगढ़ चले आये। इसके पश्चात् शाके १५७४ के आरम्भ होते ही स्वामी जी जांव चले आये। यहां पर आप रामनवमी के उत्सव में सम्मिलित हुए और कुछ दिन रह कर पुनः सज्जनगढ़ चले आये।

सज्जनगढ़ से मातापुर होते हुए स्वामी जी तैलंग प्रान्त में गये और सारंगपुर के समीप इंदूरगाव में पहुंचकर तालाब में खड़ी हुई एक नौका पर ठहरे। यहां पर आप ने देखा कि साठ ब्राह्मण नाभि पर्य्यन्त जल में खड़े हुए कुछ अनुष्ठान कर रहे हैं। अन्वेषण करने पर विदित हुआ कि इस नगर में इस वर्ष वृष्टि नहीं हुई। इसीलिए ब्राह्मण प्रार्थनानुष्ठान कर रहे हैं। यह जान कर स्वामी जी भी इन ब्राह्मणों में सम्मिलित हो गये। परिणाम यह हुआ कि इसी दिन वृष्टि हुई। यह वृत्तान्त शाके १५७५ का है और इसके पश्चात् स्वामी जी बहुत दिन पर्य्यन्त यहां रहे। इसी समय महाराज शिवा जी एक अन्धविश्वास के वशीभूत होकर औरंगज़ेब के जाल में जा फँसे थे किन्तु परमात्मा की कृपा और निज चातुर्य्य के प्रताप से यह उस जाल से शीघ्र ही मुक्त हो गये।

इस समय स्वामी जी इंदूर में थे। शिवा जी की मुक्ति का समाचार पाते ही आप महुली चले आये। समर्थ के माहुली आने का समाचार सुनते ही शिवाजी माहुली आए

और अपने गुरु से मिलकर कृतकृत्य हुए। स्वामी जी भी अपने सुयोग्य शिष्य को एक बड़े भारी सङ्कट से मुक्त हुआ देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। शिवाजी ने जाल में फंसने और मुक्त होने का सब वृतान्त समर्थ के समक्ष निवेदन किया। स्वामी जी का अन्तःकरण इस विचित्र वृतान्त को सुनकर गद्‌गद हो गया। इसके पश्चात् शिवाजी रामगढ़ चले आये। एक बार स्वामी जी शिष्यों के सहित रामगढ़ा आए। यहाँ पहुंचने पर सब लोग अपने अपने काम में लग गये। कुछ समय पश्चात् समर्थ ने खाने के लिए पान मांगा। शिष्यों ने देखा तो पान नहीं थे अतः सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। कुछ समय पश्चात् यह समाचार कल्याण को विदित हुआ। जब कुछ प्रबन्ध न हो सका तब कल्याण पान लाने के लिए चाफल की ओर चल दिये। समय रात्रि का था। कुछ देख न पड़ता था अतः स्थान से थोड़ी ही दूर आ पाए थे कि एक सर्प पर पैर पड़ गया और उसने इनको काट लिया सर्प के काटते ही कल्याण "जय जय श्री रघुवीर समर्थ" कह कर गिर पड़े। कल्याण का शब्द समर्थ ने भी सुना अतः उन्होंने अपने शिष्यों से पूछा कि कौन चिल्लाता है? देखने पर विदित हुआ कि कल्याण को सर्प ने काटा है। यह सुन कर समर्थ भी कल्याण के समीप पहुंचे और परमात्मा से प्रार्थना करते करते उसके ऊपर अपना हाथ फेरने लगे। साराँश यह है कि समर्थ की प्रार्थना के प्रभाव से परमात्मा ने कृपा की और कल्याण उठ बैठे।

इन्हीं दिनों उडपी नामक स्थान में माधवाचार्य्य नाम के एक वैष्णव महात्मा निवास करते थे। यह किसी के हाथ का छुआ नहीं खाते थे और न किसी की उपस्थिति में भोजन

करते थे। इनके कान में समर्थ की कीर्ति पड़ी कुछ दिन पश्चात् समर्थ की यथार्थता को जानने के लिये यह बड़े उत्सुक हुए अतः इन्हों ने अपने एक शिष्य को स्वामी जी के समीप यथार्थ बातों को जानने के लिने भेजा। शिष्य जी बड़े ठाठ के साथ समर्थ से मिलने चल दिये। एक दिन मार्ग में ये लोग नदी के किनारे ठहरे। भोजनों का प्रबन्ध किया गया शिष्य जी महाराज अपने हाथ से भोजन बनाकर नदी से जल लेने चल दिये। जब जल लेकर लौटे तब देखा कि एक कुत्ता चौके में घुसा हुआ शिष्य जी से पहले ही भोग लगा रहा है। शिष्य जी महाराज कुत्ते को उपद्रव करते देखकर बहुत क्रोधित हुए। किन्तु इनके आते आते कुत्ता जी भाग गये। अब शिष्य जी बड़े असमञ्जस में पड़े। यदि भोजन पुनः बनावें तो महाकष्ट हो और यदि बनाए हुए को न खांय तो दूसरे दिन इसी समय तक एकादशी हो जाय। बहुत विचार करने के पश्चात् शिष्य जी ने इधर उधर देखा और जब देखा कि कोई देखता तो है ही नहीं तब यही विचार करके उसी भोजन से अपनी भूख को शान्त किया। दूसरे दिन शिष्य जी महाराज समर्थ के समीप पहुंचे और माधवाचार्य्य जी का हस्ताक्षर किया हुआ मंत्र दिया। समर्थ जी ने बड़े सत्कार से ठहराने का प्रबन्ध किया और शिष्य जी से स्नान सन्ध्यादि करने के लिए प्रार्थना की। स्नानादि के लिए प्रार्थना करते ही शिष्य जी ने कहा "आप लोग मेरे लिए भोजन बनाने का कष्ट न करें। मैं स्वयम् बना लूंगा" शिष्य के कथन को सुनकर समर्थ ने "अच्छा, ऐसा ही होगा" उत्तर दिया। शिष्य जी स्नान करने चले गये किन्तु स्वामी जी ने अपने शिष्यों को पहले ही से सूचित कर दिया कि शिष्य जी को सब सामिग्री

तो दे दी जाय किन्तु घी न दिया जाय। ऐसाही किया गया। शिष्य जी ने स्नान सन्ध्या बन्दनादि करके भोजन बनाया और विष्णु भगवान् का भोग लगा कर भोजन करने के लिए उद्यत हुए। इतने ही में स्वामी जी एक हाथ में दोना और एक में घी का वर्तन लेकर आये और शीघ्रता से शिष्य जी के समीप दोना रख कर उसमें घी डाल दिया। घी डालते ही शिष्य जी बड़ी आपत्ति में पड़े और सोच विचार कर कहने लगे "स्वामी जी! हमारे यहां ऐसा नियम नहीं है। हम तो किसी की उपस्थिति में भी भोजन नहीं करते तब स्पर्श हो जाने पर तो किसी प्रकार सम्भव ही नहीं हो सकता"। इस पर स्वामी जी ने कहा "मैं भी तो वैष्णव हूं" किन्तु शिष्य जी ने उत्तर दिया "आप हैं तो किन्तु मुद्रांकित नहीं हैं"। यह कह कर शिष्य जी उठ बैठे। बड़ा उपद्रव मचा। शिष्य जी को उठते देख कर कल्याण ने कहा "आचार्य्य जी! मैं आप को सब आवश्यक पदार्थ अभी लाए देता हूं। आप पुनः बनाने की कृपा करें। किन्तु स्वामी जी ने इसकी कोई चिन्ता न की और कहने लगे "क्यों! आचार्य्य जी! क्या मेरा देह कुत्ते से भी अधिक अपवित्र है?"

समर्थ ने बार बार इसी एक वाक्य का उच्चारण किया। सब उपस्थित सज्जन स्वामी जी के कथन को सुनकर बड़े आश्चर्य्यित हुए और उस पर विचार करने लगे किन्तु कोई कुछ न समझ सका। अन्त में शिष्य जी का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। कल्याण ने भी पूछा "स्वामी जी! कुत्तेसे भी आप अधिक अपवित्र हैं" ऐसा कहने से आप का क्या प्रयोजन है? स्वामी जी ने कहा "आचार्य्य जी ही से पूछो"।

इतना उपद्रव होने पर शिष्य जी की आंखें खुलीं। अब तो यह लगे क्षमा मांगने के लिए अवसर देखने। अन्त में इन्होंने स्वामी जी के चरण छुए और क्षमा मांगी। तदुपरान्त सब लोगों ने एक साथ बैठ कर भोजन किया। इसके पश्चात् शिष्य जी ने समर्थ से प्रार्थना की कि "कुत्ते वाला उत्पात आचार्य्य के समीप न पहुंचने पावे"। समर्थ ने कहा "इसकी कोई चिन्ता न करो"।

इसके पश्चात् शिष्य जी उडुप को चले गये और वहां पहुंच कर समर्थ के योगबल की अत्यन्त प्रशंसा की। धीरे धीरे शिष्यों को जब कुत्ते वाला वृत्तान्त विदित हुआ तब उन्हें स्वामी जी के उस कथन का आशय ज्ञात पड़ा।

कुछ दिन पश्चात् शाके १५७६ में समर्थ रामेश्वर की ओर गये। मार्ग में माधवाचार्य्य जी के समीप ठहरे। आचार्य्य ने आप का स्वागत किया और आदर पूर्वक ठहराया।

त्याग का आदर्श

एक दिन समर्थ माहुली में स्नान सन्ध्या करके भिक्षा मांगते मांगते सितारे में शिवा जी के महल में गये और "जय जय श्री रघुवीर समर्थ" की गर्जना करके भिक्षा माँगी। गुरु की वाणी सुन कर शिवाजी का हृदय गद्गद हो गया। वे विचारने लगे कि ऐसे सत्पात्र गुरु को क्या भिक्षा देनी चाहिये। कुछ विचार कर शिवा जी ने चिटणीस को बुलाया और एक पत्र पर "श्री समर्थ के चरणों में सब राज्य अर्पण किया" ऐसा लिखवा कर एवम मुहर करके बाहर आये और झोली में इस पत्र को डाल कर प्रणाम किया।

यह देख कर स्वामी जी बड़े आश्चर्यित हुए और बोले "क्यों शिवबा! एक मुट्ठी चावल डाले होते तो पेट भरता,

आज क्या एक कागज़ डाल कर मेरा आतिथ्य करते हो" किन्तु जब उसे निकाल कर पढ़ा तब विदित हुआ कि राज्य दान किया है। यह देख कर स्वामी जी ने कहा "क्यों शिवबा ! राज्य तो तुमने मुझको दे दिया, अब तुम क्या करोगे?" शिवा जी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया "आप के चरणों की सेवा में समय व्यतीत करूंगा"। यह सुन कर स्वामी जी हँसे इसके पश्चात् स्वामी जी और शिवा जी भोजन करने चले गये।

भोजन करने के पश्चात् स्वामी जी एक वृक्ष के नीचे आ बैठे और शिवा जी को उपदेश करने लगे। आपने कहा "बाबा जिसका काम उसी को करना उचित है। ब्राह्मणों को स्नान सन्ध्यादि करके ज्ञान सम्पादन करना चाहिये, क्षत्रियों को क्षात्रधर्म का पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपने अपने कर्तव्य का पालन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अपना २ कर्म यथोचित रीति पालन करने ही में जन्म की सार्थकता है। इसके पूर्व रामचन्द्र जी ने अपने कुल-गुरु वसिष्ठ को आधा राज्य अर्पण किया था उस समय भगवान वसिष्ठ ने जो कुछ उपदेश उन्हें किया था सो योगवासिष्ठ में विद्यमान है। इसके अतिरिक्त राजा जनक ने भी अपने गुरु याज्ञवाल्क्य को राज्य अर्पण कर दिया था किन्तु उन्होंने भी उपदेश करके उनका राज्य लौटा दिया था अतएव हमको राज्य की क्या आवश्यकता है ? कदाचित हम स्वीकार भी कर लें तो उसके लिये एक प्रबन्ध की आवश्यकता ही होगी। सो बाबा प्रधान या प्रबन्धक तूही बन और राज्य हमारा समझ।

समर्थ जी के कथन को सुन कर शिवा जी का हृदय गद्-गद हो गया और जब देखा कि राज्य लौटा लेने के अतिरिक्त

कुछ नहीं किया जा सकता तब कहा "महाराज! राज्य आप का है। मैं आप के प्रधान की भांति राज काज करूंगा अतः सिंहासन पर रखने करने के लिये आप मुझे अपनी पादुका दें"। स्वामी जी ने पादुका दे दी। इसके पश्चात् शिवा जी ने एक चिन्ह और मांगा। इसके उत्तर में स्वामी जी ने निज चिन्ह स्वरूप भगवा रंग का उपयोग करने की आज्ञा दी। शिवा जी ने इसे स्वीकार किया और अपना झंडा भगवा कर दिया। मरहठों का भगवा झंडा इतिहास में प्रसिद्ध है।

शाके १५७७ में स्वामी जी तंजोर गये। यहां के राजा व्यंकोजी ने समर्थ का स्वागत किया। इस समय इन राजा जी के पास एक आंध्र देश का एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। इसको महाराज का यह कृत्य रुचिकर न हुआ। एक दिन उसने स्वामी जी से कहा "आप ब्रह्मचारी हैं आप के पास स्त्रियों का रहना उचित नहीं" समर्थ इस कथन को सुन कर ब्राह्मण को एकान्त में ले गये और अपनी इच्छा से वीर्य्य स्खलित करके पुनः भीतर कर लिया। इस अलौकिक कृत्य को देख कर ब्राह्मण देवता चकित रह गये। इसके पश्चात् भू-देव ने समर्थ का बड़ा सत्कार किया। इसी सम्वतसर के ज्येष्ठ मास में व्यंकोजी ने स्वामी जी से दीक्षा ली। इसके पश्चात् स्वामी जी ने जब जाने की इच्छा प्रकट की तब महा-राज ने ठहरने के लिये बहुत सा आग्रह किया किन्तु स्वामी जी को एक स्थान पर ठहरना कदापि स्वीकार न था। अतः यह वहाँ एक मठ स्थापना करके और भिको जी गोसावी को उसका अध्यक्ष बना कर चले आये।

इसके पश्चात् अनेक तीर्थों को देखते देखते स्वामी जी पुनः कृष्णातट पर आगये। महाराज के प्रत्यागमन का समा-

चार सुनते ही शिवा जी दर्शनार्थ आये और सब वृत्तान्त सुन कर तथा कई दिन स्वामी जी की सेवा में रह कर रायगढ़ चले आये।

माता जी का स्वर्गबास

एक समय परली में बैठे बैठे स्वामी जी को अकस्मात् ही जांब जाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। आप उसी समय चल दिये। पहुंचने पर माता जी को अत्यन्त रोग ग्रस्त पाया। माता जी भी यह जान चुकी थीं कि अब उनको शरीर छोड़ देना होगा अतः वे अपने नारायण से मिलने के लिये अत्यन्त उत्सुक थीं। आप कह ही रहीं थी कि "माझा नारायण माझया अन्तकालो समीप नाहीं" इतने ही में समर्थ ने पहुंच कर नमस्कार किया और कहा "माता जी! मैं आ गया। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें।

अपने नारायण से मिल कर कौन प्रसन्न नहीं होता? माता का हृदय गद्गद हो गया। इस समय समर्थ ने पुनः कहा "हे माता जी! आप साक्षात् भगवती हैं"।

सज्जनों! समर्थ के इस कथन से हम भी सहमत हैं निस्सन्देह! जिनकी कुक्षि से समर्थ जैसा नर रत्न उत्पन्न हो वह भगवती, कल्याणी या शिवा नहीं तो और कौन है?

कुछ समय के पश्चात् यह भलीभांति जान कर कि उसने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया यह महान् आत्मा "शिव, शिव" कहता हुआ इस शरीर से चल बसा।

शोक का स्थान है, किन्तु क्या किया जाय? तदुपरान्त महात्मा समर्थ और महात्मा श्रेष्ठ के पवित्र हाथों से इस परम पवित्र देह का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। यहां कुछ दिन निवास करके समर्थ परली लौट आये।

समर्थ की स्मरण शक्ति और दयालुता।

पैठण में एकनाथ नामक ब्राह्मण रहता था धनोपार्जन के लिए यह ब्राह्मण देशान्तरमें चला गया। कुछ दिन में अपने व्यय से ६१ मुहरें बचा कर यह घर की ओर चला किन्तु इच्छा हुई कि मार्ग में अपने प्रसिद्ध बन्धु के दर्शन करता चले। ऐसा निश्चय करके यह भूदेव समर्थ के आश्रम में आ ठहरा। इस समय स्वामी जी एक वृक्ष के समीप बैठे हुए थे। दो पहर का समय था। कुशल प्रश्न के उपरान्त स्वामी जी ने भोजन करके जाने के लिये कह दिया। ब्राह्मण के सन्ध्यावन्दन करते करते भोजन बनचुका किन्तु इतने में साठ ब्राह्मण राजापुर से स्वामी जी की खोज करते करते और आ पहुंचे। कुशल प्रश्न के पश्चात् इनसे भोजनों के लिए कहा गया। सारांश यह है कि इन सबने भोजन किया।

भोजन कराने के पश्चात् स्वामी जी ब्राह्मणों को दक्षिणा भी दिया करते थे किन्तु इस समय यह कोरे बाबा जी थे। इतने पर भी दक्षिणा तो देनी ही चाहिये यह निश्चय करके उन्होंने पूछा "क्या किसी के पास कुछ धन है"? किसी शिष्य के पास कुछ न निकला किन्तु पहले आए हुए ब्राह्मण के पास ६१ मुहरें थीं सो उसने तत्काल देदीं। समर्थ ने सब ब्राह्मणों को एक एक मुहर दक्षिणा दी। एक मुहर एकनाथ जी को भी दी। इसके पश्चात् सब ब्राह्मण चले गये और केवल एक नाथ जी अपनी मुहरों के पुनः प्राप्त करने की प्रतीक्षा करने लगे। प्रतीक्षा करते करते कई दिन बीत गए किन्तु समर्थ ने मुहरों की बात भी न निकाली। ब्राह्मण देवता बड़े असमञ्जस में पड़े। तीन वर्ष के पश्चात् यदि घर कोरे बाबा जी बन कर जांय तब भी लज्जा की बात है और यदि

ब्राह्मणों को दक्षिणा में दी हुई मुहरें स्वामी जी से मांगते हैं तब भी नीचता है। इसके पश्चात् एक दिन स्वामी जी ने ब्राह्मण को बिदा भी कर दिया और पहुंचाने के लिये आप भी उसके साथ हो लिए। कुछ दूर साथ चलने के पश्चात् स्वामी जी ने ब्राह्मण को नमस्कार किया और आप जंगल के भीतर घुस कर अन्तर्द्धान हो गये। अब तो देवता बड़ी आपत्ति में ग्रसित हुए क्योंकि जब तक समर्थ थे तब तक तो मुहरों के मिलने की आशा थी किन्तु अब तो कोई आशा ही नहीं रही। घर भी रिक्त हाथ कैसे जाँय यह सोच लज्जा के मारे भूदेव मार्ग ही में एक छोटे से गांव में ठहर गये।

इस ओर समर्थ पैठण पहुंचे और एकनाथ जी के घर पर जाकर उनके पिताको १२२ मुहरें देकर चले आए। प्रातःकाल सूखा सा मुख लिए एकनाथ जी भी घर पहुंचे। घरवालों को बड़ा आनन्द हुआ किन्तु एकनाथ जीबहुत उदास थे। इनको उदास देख कर पिता जी ने इनके उदास होने का कारण पूछा तब एकनाथ जी ने कहा "क्या करें तीन वर्ष पश्चात् तो आए और सो भी रिक्त हाथ, इससे अधिक उदास होने का कारण अन्य क्या हो सकता है"? किन्तु पिता जी ने कहा "उदास होने का कोई कारण नहीं तुम जितना धन लाए हो हमारे लिये उतना ही बहुत है। हम तो १२२ मुहरें ही बहुत समझते हैं"।

अन्त में विदित हुआ कि एक "राम दास" नामक मनुष्य एकनाथ जी के नाम से १२२ मुहरें देगया है।

इस विचित्र घटना को देख कर एकनाथ जी बड़े आश्चर्यित हुए और मनही मन स्वामी जी को प्रणाम करने लगे।

कुछ दिन यहां रह कर एकनाथ जी शाके १५७८ में समर्थ के समीप पुनः चाफल गये और दीक्षा ली।

गोसावी बुडाला

एक दिन समर्थ कोंडवण की गढ़ी से चाफल की ओर चले। मार्ग में कोयना नदी बहुत चढ़ी थी। पार जाने के लिए और कोई साधन न था अतः समर्थ नदी में कूद पड़े और तैर कर पार जाने लगे किन्तु बीच में पहुंच कर आप एक भँवर में फँस गये। लोग "गोसावी बुडाला, गोसावी बुडाला" कह कह कर चिल्लाने लगे किन्तु कोई निकाल न सका।

इतने में चांद जी राव नौका और अनेक डुब्बी मारनेवाले लोगों को लेकर उक्त स्थान पर आ पहुंचे और इधर उधर समर्थ को खोजने लगे। सायं काल पर्य्यन्त बहुत कुछ प्रयत्न किया गया किन्तु कुछ पता न चला। हार कर चांद जी राव ने चाफल के मठ को पत्र लिखा कि "समर्थ कोयना नदींत बुडाले" अर्थात् समर्थ कोयना नदी में डूब गये। पत्र पहुंचतेही उद्धव गोसावी और कल्याण गोसावी शीघ्र चल दिए एवम् तीसरे ही दिन पाटण में आकर ग्रामाध्यक्ष से मिले और समर्थ जिस स्थान पर डूबे थे उसे दिखानेके लिये कहा।

चांद जी राव ने कहा "अब वहां चलने से क्या लाभ हो सकता है? विदित नहीं शरीर बहते बहते कहां पहुंचा हो और सम्भव है कि जलचरों ने खा भी लिया हो" किन्तु कल्याण हँसे और बोले "हमारेस्वामी का देह ऐसा मार्ग में थोड़ा ही पड़ा है आप चलने की कृपा करें"।

आज्ञानुसार चांद जी राव इन दोनों को उस स्थान पर ले पहुंचे। यहां पहुंच कर कल्याण ने कहा "यदि स्वामी जी डूब गये तो मैं भी उनके बिना जीता नहीं रह सकता"। यह कह

कर धड़ाम से नदी में कूद पड़े। ग्रामाध्यक्ष ने बहुत रोका किन्तु इस गुरभक्त ने एक न मानी। तैरते तैरते आप उसी भँवर के समीप जा पहुंचे। यहां पहुंच कर आपने एक डुब्बी लगाई। नीचे पहुंचने पर आपने देखा कि स्वामी जी ध्यानावस्थित बैठे हुए परमात्मा का भजन कर रहे हैं। कल्याण ने स्वामी जी को अपने शिर से उठा लिया और बाहर निकल आए। समर्थ को चार दिन पश्चात् जल से बाहर जीवित आते देख कर लोग स्तब्ध रह गये। बाहर आने पर समर्थ ने कहा "कल्याण तुमने मुझको बचा लिया" इस पर कल्याण ने कहा " आप संसार के एक भाग को बचा रहे हैं मैं आप को क्या बचा सकताहूं ? " इसके पश्चात् सब लोग चाफल चले आये। यह वृतान्त तंजावर मठाधीश मौनी बुवा के शिष्य मेह ने ओंवी छन्द में वर्णन किया है।

समर्थ का घोड़ा

यह पहले कई बार बतलाया जा चुका है कि शिवाजी की समर्थ पर अप्रतिम भक्ति थी। किसी भी उत्तम वस्तु को देखते ही इनके मन में समर्थका स्मरण हो आता था। एक बार किसी ने एक अति उत्तम घोड़ा महाराज का भेंट किया। स्वभावानुसार शिवा जी ने उस घोड़े को समर्थ की भेट करने की इच्छा की। आप ने तत्काल उसे उत्तम उत्तम आभूषणों से अलंकृत करके परली में स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी ने घोड़े को देखते ही कहा "अरे ! इसे क्यों बांध रखा है? खोलो! खोलो !!" यह कह कर आपने सब आभूषण आदि पृथक करा दिए और लगाम भी निकाल डाली। लगाम के निकालते ही आप नंगी पीठ पर कूद कर चढ़ गये। इनके चढ़तेही घोड़ा भागा। समर्थ भी बड़े आनन्द पूर्व्वक घोड़े को दौड़ाने लगे। घोड़े ने

दुर्ग के चक्कर लगाना आरम्भ कर दिया । इस समय कोई स्वामी जी के साथ न रह सका केवल उद्धव गोसावी और कल्याण गोसावी साथ रह गये । दौड़ते दौड़ते ११ बज गये । दो पहर होने आया तब समर्थ को प्यास लगी । इस समय इन्हों ने अपने चारों ओर देखा । उद्धव गोसावी तो पीछे थे ही अतः उनको समीप बुला कर इन्होंने पानी पीने की इच्छा प्रकट की । आज्ञा पातेही उद्धव गोसावी ने शर्करायुक्त शीतल जलपीने के लिये ला दिया । इस समय समर्थ उद्धव गोसामी पर बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे "तू मेरे लिये शिव स्वरूप है । इसलिये आज के पश्चात् तेरा नाम शिव होगा" । इसके पश्चात् उद्धव गोसावीको सब लोग "शिव" नामसे सम्बोधन करने लगे । घोड़े का नाम स्वामीजी ने राम बाण रखा और चाफल के मठमें भेज दिया । यह वृतान्त शाके १५७६ का है ।

स्वामी जी का दया भाव

एक बार शाके १५८० में समर्थ इधर उधर भ्रमण करते हुए कल्हाड़ से परली जारहे थे । बीस पचीस शिष्य भी साथ थे इतनेमें मध्यान्ह हो गया । सबको भूख लगी । समीप ही एक खेत था । बहुत भूख लगने पर शिष्यों ने खेत से कुछ तोड़ ताड़ कर खालेने की आज्ञा मांगी । इस पर स्वामी जी ने कहा "एक स्थान पर सब न खाओ । थोड़ा २ सब स्थानों से तोड़लो" आज्ञा पातेही शिष्योंने भुट्टे तोड़ना आरम्भ कर दिया और कुछ समय में बहुत से भुट्टे तोड़ कर एक कुए के किनारे आ बैठे । एक ओर समर्थ का आसन डाल दिया और सब लोग भुट्टे भूनने लगे । खेत का स्वामी इस उपद्रव को दूर ही से देख रहा था इसे बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और "यह गोसावी

बड़ा ही उपद्रव का कारण है" ऐसा समझ कर सीधा आते ही समर्थ को पीटने लगा।

गुरू को पिटते देख शिष्यों को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने खेत के स्वामी को पीटना चाहा किन्तु स्वामी जी ने अपने शिष्यों को ऐसा करने से रोक दिया और कहा "इसके खेत में बैठ कर और इसका अन्न खा कर इसे मारना उचित नहीं है"। समर्थ के दयाभाव को देखकर शिष्यों को मनही मन सन्ताप हुआ किन्तु करते क्या चुप हो गये। खेत का स्वामी भी चला गया। इसके पश्चात् शिवाजी को ज्ञात हुआ कि समर्थ माहुली सङ्गम पर स्नान करके आ रहे हैं अतः यह बड़े स्वागत के साथ स्वामी जी को सितारा ले आये। दूसरे दिन जबकि शिवाजी स्वामीजी को स्नान करा रहे थे तब उन्होंने इनकी पीठ पर मार के चिन्ह देखे। बहुत पूछने पर भी स्वामी जी ने कुछ न बताया किन्तु भोजनोपरान्त जबकि स्वामी जी विश्राम कर रहे थे तब बहुत प्रयत्न करने पर एक शिष्य से मार्ग का सब समाचार विदित हुआ। शिवाजी को बड़ा क्रोध आया और उन्हों ने तत्काल उस खेत के स्वामी को बांध कर ले आने की आज्ञा दी। समर्थ इस बात चीत को पड़े पड़े शयनागार में सुन रहे थे। उन्हों ने शिवाजी को बुलाया और कहा 'खेत के स्वामी को बांध कर न लाओ न उसे मारो किन्तु लाने के पश्चात् जैसा हम कहें वैसा करना। शिवाजी ने आज्ञानुसार कार्य करने की आज्ञा दे दी।

दूसरे दिन न्यायालय में खेत का स्वामी लाया गया। उसने जब अपने पीटे हुए स्वामी को महाराज के दिव्य सिंहासन पर बैठे देखा तब भय के मारे थर थर कांपने लगा।

अन्त में यह स्वामीजी के चरणों में गिर पड़ा और रोने लगा समर्थ ने आज्ञा दी कि इसको क्षमा कर दिया जाय और खेत को भी सदैव के लिये उसे दे दिया जाय। आज्ञानुसार ऐसा ही किया गया। समर्थ की दयालुता को देख कर उपस्थित सज्जन चकित रह गये और मुक्त कंठ से स्वामी जी की प्रशंसा करने लगे। धन्य है ऐसे महात्माओं को जो अपकार के परिवर्तन में उपकार करते हैं एक हम हैं कि उपकार के परिवर्तन में अपकार करते हैं। यदि अपकार के परिवर्तन में उपकार करनेवालों को लोग देवता समझ कर पूजते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

शीत का प्रतिवाद

शाके सम्बत् १५८० फाल्गुण मास में स्वामी जी चाफल में थे यहां आप को शीत ने दबाया और ज्वर आने लगा। बहुत उपचार किया किन्तु कोई शुभ परिणाम नहीं हुआ। इतने में शिवाजी महाराज दर्शनार्थ आये। महाराज को समर्थ के शीत ग्रसित होने का समाचार विदित न था। शिवा जी के आने का समाचार कल्याण स्वामी ने समर्थ को पहुंचाया। इस पर आज्ञा हुई कि भीतर आने दो। शिवाजी के भीतर प्रवेश करते ही स्वामी जी ने ओढ़नेवाले वस्त्र को भी लपेट कर रख दिया और आप उठ कर बैठ गये तथा सदैव की भांति बातचीत करने लगे। इस समय ऐसा विदित होता था कि आप रोगग्रसित थे ही नहीं। इसके पश्चात् यह विदित हुआ कि स्वामी जी इस समय तक अस्वस्थ थे और उपचार करने पर भी कोई लाभ नहीं होता था किन्तु अभी शिवाजी के आने का समाचार सुनकर स्वयमेव उठ कर बैठ गये। शिवाजी

इस चमत्कार को देखकर चकित रह गये और बोले "महाराज! शीत के भगाने का सामर्थ्य रखते हुये भी आप शारीरिक कष्ट क्यों सहन करते हैं?" इसके उत्तर में समर्थ ने कहा "बाबा। एक दो बार ऐसा हो सकता है और यदि सदैव ऐसा करने का प्रयत्न किया जाय तो सृष्टि नियम में बाधा आवे। इसके अतिरिक्त देह भोग तो करनाही चाहिये।

इसके पश्चात् शिवाजी तीन दिन और ठहरे तदुपरान्त अपने स्थान को लौट गये।

सदाशिव शास्त्री और समर्थ

इस समय देश में सदाशिव शास्त्री नाम के एक बड़े अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने काशी में षट्शास्त्रों का अध्ययन किया था किन्तु यह हठ बहुत करते थे। व्याकरण शास्त्र में इनका प्रवेश बहुत अच्छा था। कुछ दिन पश्चात् इनको एक और भयङ्कर रोग लग गया अर्थात् अपनी प्रतिष्ठा और विद्वत्ता को स्थापित व सर्वमान्य करने के लिये इन्होंने स्थान २ पर शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया। आप ने एक मशाल जलवाई और एक छुरी यज्ञोपवीत में बांधी। मशाल इसलिये थी कि यदि वे शास्त्रार्थ में पराजित होंगे तो वह बुझा दी जायगी और छुरी पराजित होनेवाले की जिह्वा काटने के लिये थी। इस प्रकार शास्त्रार्थ करते और सहस्रों विजय पत्र एकत्रित करते हुये शास्त्री जी सितारे पहुंचे। शिवाजी ने इनकी भली भांति पूजा की और आपके निमित्त दूसरे दिन एक सभा करने की आज्ञा थी। शिवा जी की सभा में एक सर्वोत्कृष्ट विद्वान् गागाभट्ट जी नाम के थे। इनको शास्त्री जी के आने पर बड़ी चिंता हुई। यह वो इन्हें पहिले ही विदित था कि शास्त्री एक अद्वितीय विद्वान् हैं अतः इन्होंने निश्चय कर

लिया कि समक्ष जाने पर प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी। बहुत सोच विचार के इन्होंने कल्पना की कि शास्त्री को समर्थ से अटका दिया जाय ऐसी दशा में झगड़ा ऊपर से ऊपर ही शान्त हो जायगा और प्रतिष्ठा बच जायगी। ऐसा निश्चय करके भट्ट जी रात्रि के समय शास्त्री जी के दर्शनार्थ गये। कुशल प्रश्न के पश्चात् आपने अपना विचार प्रकट किया। शास्त्री जी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन सभा हुई। शास्त्री जी एक उच्च आसन पर आ विराजे इसी समय गागा जी भट्ट भी पधारे किन्तु यह समक्ष न बैठ कर एक ओर बैठ गये।

भट्ट जी को एक ओर बैठते देख कर शिवाजी ने पूछा "यह क्या?" इस पर गागा जी भट्ट ने उत्तर दिया "इस आसन पर बैठने का अधिकार मेरा नहीं है समर्थ का है। इतने में सदाशिव शास्त्री जी ने भी कहा 'हां! मुझे भी स्वामी जी से ही शास्त्रार्थ करना है।"

शास्त्री जी का कथन महाराज को बहुत बुरा लगा और उन्होंने कहा "आप ऐसा क्यों करते हैं ? स्वामी जी का मार्ग दूसरा है आप का दूसरा है। वे विद्वान नहीं हैं। केवल ईश्वर भक्त हैं। न वे ऐसे झगड़े में पड़ना पसंद करेंगे "किन्तु शास्त्री जी ने इसे स्वीकार न किया। भट्ट जी ने भी शास्त्री के कथन का अनुमोदन किया। यह देख कर शिवा जी ने कहा "अच्छा। ऐसा ही सही किन्तु स्वामी जी यहां आ न सकेंगे। आप लोगों ही को वहां चलना होगा" शास्त्री ने स्वामी जी के समीप चलना स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन सर्व मंडली चाफल की ओर प्रस्थित हुई किन्तु स्वामी जी वहाँ न थे। वे उनदिनों रामगढ़ी में थे।

ये लोग भी रामगढ़ी चल दिये। यहां पर स्वामी जी एक वृक्ष के नीचे कुबड़ी टेके हुए बैठे थे। इसी समय कल्याण ने स्वामी जी को शिवा जी के आने की सूचना दी। समीप पहुंच शिवाजी और गागाभट्ट ने नमस्कार किया किन्तु सदाशिव शास्त्री उसी प्रकार खड़े रहे अर्थात् इन्होंने नमस्कार नहीं किया। यह देखकर स्वामी जी ने शास्त्री जी को नमस्कार किया किन्तु इसके उत्तर में शास्त्री जी ने कहा "मैं आप से वाद करने आया हूं। पहिले वाद होना चाहिये इसके पश्चात् यदि मैं आपकी अपेक्षा अधिक योग्य ठहरा तो आपको आशीर्वाद दूंगा अन्यथा नमस्कार करूंगा !"

स्वामी जी ने कहा "आप साक्षात् भूदेव हैं। आप को नमस्कार करने की आवश्यकता नहीं है। आप का तो केवल आशीर्वाद देना ही बहुत है।

इस पर शास्त्री ने कहा "विना परीक्षा कुछ न करूंगा"। उत्तर में स्वामी जी ने कहा "मेरी क्या परीक्षा करोगे? मैं तो विद्वान नहीं हूं किन्तु बनचरों की भांति बन में रहा करता हूं और परमात्मा का भजन किया करता हूं" इस पर शास्त्री जी ने कहा " मैं आपके पास ब्रह्म ज्ञान सीखने नहीं आया। यह तो आप भोले भाले लोगों को सिखाया कीजिये। स्वामी जी ने कहा कि "दुराग्रह न करो" किन्तु सदाशिव ने एक न सुनी। अन्त में जब किसी प्रकार पीछा छुटते न देखा तो उन्होंने एक साधारण से मनुष्य को बुलाकर शास्त्री से वाद करने के लिये कह दिया। इस मनुष्य ने शास्त्री जी से ऐसा विद्वत्ता पूर्ण वार्तालाप किया कि इनको कुछ कहते न बन पड़ा। जब य निरुत्तर होगये तो इन्होंने अपनी मशाल अपने ही हाथों से बुझा डाली और अपनी जीभ काटने के लिये छुरी निकाली।

यह देखकर समर्थ ने कहा "कल्याण ! पकड़ो ब्राह्मण मरता है।"

आज्ञा पाते ही कल्याण ने छुरी छीन ली। इसके पश्चात् सदाशिव शास्त्री ने स्वामी जी से दीक्षा ली और स्वामी जीने इनका नाम वासुदेव गोसावी रक्खा।

पागल का स्वांग

स्वामी जी के स्थान पर भोजन सब शिष्यों को मिलता ही था अतः सहस्रों शिष्य एकत्रित हो गये। जिसको आरामसे दिन बिताने होते थे वही यहां चला आता था। एक बार बहुत से शिष्यों को देख कर स्वामी जी को कुछ सन्देह हुआ। कुछ विचार करने के पश्चात् आपने एक तलवार उठाली और लगे सब के पीछे दौड़ने। तलवार हाथ में लिये स्वामी जी को इधर उधर दौड़ते देखकर शिष्यों ने समझा कि वे पागल हो गये अतः सबने अपने २ घरों का मार्ग पकड़ा। कल्याण स्वामी इस समय बाहर थे। जब वे भीतर आने लगे तो लोगों ने बतलाया कि स्वामी जी पागल हो गये।

कल्याण इस समाचार को सुनकर हंसे और निर्भय हो स्वामी जी के समीप चले आये। समर्थ कल्याण पर बहुत प्रसन्न हुए। यह वृत्तांत शाके १५८१ का है।

कल्याण की गुरुभक्ति

श्री समर्थ का मठ मानो एक बड़ा भारी अनाथालय है ऐसा समझ कर इधर उधर के निर्धन और भुक्कड़ दीक्षा की ओट लेकर आनन्द से अपने दिन बिताने लगे। जब स्वामी जी ने देखा कि शिष्य सम्प्रदाय ग्रीष्म ऋतु के मच्छरों की भांति बढ़ रहा है तो इन्होंने अपने वास्तविक शिष्यों को जानने की इच्छा को परीक्षा लेने का निश्चय करके एक दिन स्वामी जी ने एक

बड़े से आम को पद तल पर रखकर बांध दिया। और उस पर बहुत सा कपड़ा लपेट कर रुदन मचाना आरम्भ किया।

स्वामी जी को रोते चिल्लाते सुनकर सब लोग स्वामी जी के चारों ओर आ एकत्रित हुए। इस समय स्वामी जी ने बहुत उपद्रव करना आरम्भ किया। बहुत लोट पेट करते देखकर लोगों ने चिल्लाने का कारण पूछा। इस पर स्वामी जी पैर दिखा २ कर चिल्लाने लगे। सब ने जाना कि पैरमें कांटा लग गया है किन्तु जब इन्होंने उसे देखना चाहा तो स्वामी जी ने पैर हटा लिया और पहिले से भी अधिक चिल्लाने लगे सब लोग बड़े असमञ्जस में पड़े कि क्या करें। कुछ लोगों ने पूछा कि क्या उपाय किया जाय इस पर समर्थ ने कहा कि "इसके लिये कुछ उपाय नहीं हो सकता, तुम लोग यहां से जाओ।"

इतने पर भी लोग हटाये न हटे किन्तु स्वामी जी भी चिल्लाते रहे। इसी प्रकार सायंकाल होगया। इस दिन किसीने भोजन भी नहीं किया। दूसरे दिन प्रातःकाल हुआ और इसी प्रकार दो पहर होगया। स्वामी जी का चिल्लाना और कराहना बन्द न होता था। शिष्य सम्प्रदाय भी घेरे खड़ा था किन्तु अब तो भोजनों का समय था। जिस भोजन के लिये हमारे जैसे आलसी पुरुषों का अखाड़ा स्वामी जी के समीप एकत्रित हुआ था उसी में यहां भी बाधा उपस्थित होगई। अतएव बहुत से शिष्यों ने तो अपना २ मार्ग पकड़ा। जो शेष रहे उनमें से बहुतेरे भागने की चिन्ता में थे और जिन के मन में भागने का विचार नहीं आया था वे बड़ी चिन्ता में थे कि क्या किया जाय। कब तक इस प्रकार काम चलेगा?

इसी समय परमात्मा की कृपा हुई और कहीं से कल्याण

स्वामी आ पहुंचे। यह स्वामी जी के बड़े प्रिय शिष्य थे। इस के साथ ही बड़े चतुर भी थे अतः सब लोगों को आशा हुई कि अब कुछ प्रबंध हो जायगा।

कल्याण का प्रवेश करते ही सामान्य स्थिति में कुछ विपर्यय जान पड़ा किन्तु कारण जानने के लिये इन को बहुत काल पर्यन्त उत्सुक न रहना पड़ा शीघ्र ही विदित होगया कि समर्थ के पैर में फोड़ा हुआ है वे चिल्ला रहे हैं और इसीलिये सब लोग इन्हें घेरे खड़े हैं

फोड़ा होने का समाचार पाते ही कल्याण जी शीघ्रता से समर्थ के समीप पहुंचे और प्रणाम करके चिल्लाने का कारण पूछने लगे। विदित हुआ कि एक बहुत बड़ा फोड़ा हुआ है। इस पर कल्याण ने पूछा कि क्या उपाय किया जाय? इस पर स्वामी जी ने वही उत्तर दिया जो कि पहिले दे चुके थे अर्थात् "इसका कोई उपाय नहीं किया जा सकता" किन्तु यह उत्तर कल्याण के लिये पर्य्याप्त न था अतः इन्होंने शीघ्र ही प्रश्न किया "क्यों नहीं किया जा सकता?"

कल्याण के प्रश्न को सुन कर स्वामी जी ने कहा "यह फोड़ा पक गया है और इसमें विष उत्पन्न हो गया है। इस समय इसका एक मात्र यही उपाय हो सकता है कि कोई इसे मुख से चूस ले किन्तु जो कोई इसे चूसेगा वह तत्काल मर जायगा अतएव चूसना भी अच्छा नहीं। दूसरे का जीव लेने की अपेक्षा अपना शरीर छोड़ना ही अच्छा है"।

स्वामी जी की बात सुन कर कल्याण को कुछ सन्तोष हुआ और उन्होंने एक आशा भरी दृष्टि से शिष्य सम्प्रदाय की ओर देखा किन्तु यह जान कर कि चूसने वाला भी मर जायगा किसी ने उत्तर न दिया। अन्त में कल्याण ने स्वयम्

ही चूसना स्वीकार कर लिया। स्वामीजी ने बहुत कुछ रोका किन्तु यह न माने। कल्याण का साहस और गुरु भक्ति देख कर लोग स्तब्ध रह गये और इस कौतुक को देखने के लिये चारो ओर घिर कर खड़े हो गये। अन्त में स्वामी जी ने बड़े धीरे से पैर को एक ओर से खोल दिया और कल्याण ने उस ओर मुखलगा कर चूसना आरम्भ कर दिया। इस समय भी थोड़ा ही बल पूर्वक स्पर्श करने से समर्थ बहुत चिल्लाते थे। सारांश यह कि चूसते समय कल्याणको कुछ मीठासा विदित हुआ अतः यह कुछ आश्चर्य्य सा करने लगे। इस समय स्वामी जी ने कहा "दुखा मत धीरे २ चूस" इस पर कल्याण ने कहा "महाराज! मैं दुखाता नहीं किन्तु यह मीठा है। मैं तो ऐसे कई व्रण होते तो बहुत प्रसन्न होता।"

ऐसा कह कर कल्याण हंसने लगे। इस समय स्वामी जी ने हंस कर पैर हटा लिया और उसे खोल कर तथा उसके भीतर से आम खोल कर सब के समक्ष पटक दिया।

अब सब को विदित हुआ कि व्रण नहीं था। केवल आम था और स्वामी जी ने इसे परीक्षा करने के लिये बांधा था। सब लोग बड़े लज्जित हुये। इस समय स्वामी जी ने कहा "कल्याण! केवल तुम एक ही सच्चे शिष्य हो अन्य सब पेट भरनेवाले हैं। देखो! जिस प्रकार सच्चे गुरु का मिलान कठिन होता है उसी प्रकार सच्चे शिष्य भी महा कठिनता से प्राप्त होते हैं।" इसके पश्चात् भोजन बनाया गया और सब लोगों ने बड़े आनन्द से भोग लगाया।

शाके १५८३ में स्वामी जी को भागा नगर जाना पड़ा। यहां आप केशव स्वामी के समीप ठहरे। इसके पश्चात् आप शिवराम

स्वामी जी की समालोचना शिक्षा

स्वामी से मिलने गये। शिवराम स्वामी ने इनका बड़े आदर भाव से स्वागत किया और अपने गुरु के समान अत्यंत आदर पूर्वक निज आश्रम में ठहराया। यहां स्वामी जी एक मास ठहरे। एक दिन स्वामी शिवराम जी ने समर्थ को अपना बनाया हुआ "पंचीकरण" दिखाया, समर्थ ने इसे भलीभाँति देखा, कहीं कहीं पर उसे ठीक भी किया और कहा कि मैंने भी एक पंचीकरण लिखा है किन्तु मेरा लिखा हुआ इतना अच्छा नहीं है जितना कि तुम्हारा है अतः मैं अब पुनः लिखने का प्रयत्न न करूंगा। तुम्हारा ही पर्य्याप्त होगा। इसके पश्चात् आप चाफल लौट आये।

माया सत्य है वा मिथ्या

शाके १५८४ में समर्थ शिष्य मण्डली के साथ बैठे हुए वेदान्त विषय पर बात चीत कर रहे थे। इसी समय स्वामी जी ने प्रश्न किया कि माया सत्य है वा मिथ्या। स्वामी जी के प्रश्न का उत्तर कोई न दे सका। सब को भय था कि स्वामी जी अवश्यही उत्तर पर तर्क करेंगे। कुछ समय पश्चात् वासुदेव गोसावी ने उत्तर दिया कि माया मिथ्या है।

इस पर समर्थ ने पुनः कहा कि भली भांति सोच विचार कर उत्तर दो किन्तु वासुदेव ने वही उत्तर दिया।

इसके पश्चात् समर्थ ने इस प्रसंग को बन्द करदिया।

एक दिन एक सपेरा कुछ सांप लेकर खेल दिखाता फिरता था। समर्थ ने इसे बुला लिया और खेल दिखाने की आज्ञा दी। इसी समय समर्थ ने वासुदेव गोसावी से प्रश्न किया कि सांप कैसा है? वासुदेव ने कहा "माया का।"

समर्थ ने पुनः प्रश्न किया कि माया सत्य है वह मिथ्या? वासुदेव ने कहा "मिथ्या"।

वासुदेव का कथन सुनकर स्वामी जी न सपेरे को सांप लाकर बासुदेव के हाथ में देने की आज्ञा दी। बासुदेव ने सर्प हाथ में ले लिया किन्तु जैसेही सर्प हाथ में लिया तत्काल सर्प हाथ के चारो ओर लिपट गया अब तो वासुदेव बड़ी आपत्ति में पड़े। पीड़ा भी होने होगी।

इस समय समर्थ ने कहा इसको हाथ से पृथक कर दो किन्तु वासुदेव ने कहा पृथक् करने का प्रयत्न करने पर यह काट लेगा। इस पर स्वामी जी ने कहा "सर्प तो माया का है और माया मिथ्या है किन्तु वासुदेवने कहा माया तो मिथ्या है परन्तु हाथ में वेदना सच्ची है। यह कह कर वासुदेव चिल्लाने लगे।

समर्थ हंसे और वासुदेव को बहुत व्याकुल देखकर सपेरे को साँप अलग करलेने की आज्ञा दी।

समर्थ के समीप पाट गांव में एक मौनी बावा थे। यह कभी किसी से बोलते नहीं थे इसी लिये इन का नाम मौनी बाबा पड़ गया था। इनके शिष्य भी बहुत थे स्वामीजीकी कीर्ति तो इस समय भारतवर्ष में मार्त्तण्ड के प्रकाशवत सर्वत्र फैल रही थी किन्तु मौनी बाबा के शिष्यों को इन के दर्शन करने का सौभाग्य अद्यावधि प्राप्त नहीं हुआ था अतः इन को उन के आत्मिक बल पर विश्वास न था। कई वार मौनी जी के शिष्यों ने समर्थ के दर्शनार्थ जाने की आज्ञा मांगी किन्तु किसी कारणवश उन्हें आज्ञा नहीं मिल सकी थी इस वार उन्होंने पुनः निवेदन किया और आज्ञा लेकर दर्शनार्थ चल दिये। समर्थ इस समय माहुली संगम पर स्नान करने का निश्चय कर के गंगा तट पर आ विराजे। स्नानोपरांत स्वामी जी ने कल्याण से कहा

समर्थ और मौनी बावा

"कल्याण ! बड़ी भूक लगी है। कुछ खाने को है? " कल्याण ने कहा "थोड़े से थालीपीठ हैं लीजिये, " यह कह कर झोली से थाली पीठ निकाल कर समर्थ के हाथ में देदिये। स्वामी जी ने खड़े २ खाना आरम्भ कर दिया। समीप ही मौनी बाबा के शिष्य ठहरे थे। वे एक सन्यासी के एक ऐसे कृत्य को देख कर बड़े चकित हुए और कहने लगे "यह कौन है? मस्तक पर जटा हैं ? भगवे वस्त्र धारण किये है किन्तु पागल की भांति खड़े २ थालीपीठ खा रहा है। " पूछने पर विदित हुआ कि शिवा जी महाराज के गुरू समर्थ स्वामी रामदास जी हैं। यह जान कर सब लोग हसने लगे और कहने लगे "धन्य ! बड़े भारी महात्मा हैं "।

इसी समय यहां एक विचित्र घटना हुई और वह यह कि इस गांव में एक ब्राह्मण रहता था, इस के पास एक बहुत अच्छी गाय थी किन्तु यह बड़ी उपद्रव करनेवाली थी। इसी लिये अन्य गांव को जाते समय यह ब्राह्मण अपनी स्त्री से कह गया था कि गाय को खोलना नहीं। अवसर वश ब्राह्मण को कई दिन लग गये। अतः ब्राह्मणी ने गाय खोल दी। खोलते ही गाय ने उपद्रव करना और कूदना फांदना आरम्भ कर दिया। स्त्री बहुत भयभीत हुई और गाय के पीछे २ चलने लगी। आगे गाय और पीछे ब्राह्मणी इस प्रकार यह गाय गांव भर में फिरी और अन्त मे वह एक नदी के किनारे पहुंची। कुछ और लोग भी उस समय मार्ग में जारहे थे उन से गाय को रोकने के लिये ब्राह्मणी ने प्रार्थना की। प्रार्थनानुसार मनुष्यों ने गाय को रोका किन्तु गाय नीचे कूद ही गई। स्त्री ने धीरे २ जाकर देखा तो गाय को पड़ा पाया। इस दुःख से ब्राह्मणी रोने लगी। इसी समय समर्थ ने कल्याण से कहा

"तुम्हारा दिया हुआ भोजन ठीक नहीं है, जाओ वह जो गाय पड़ी है उसका थोड़ा सा दूध निकाल लाओ"। आज्ञा पाकर कल्याण हाथ में तूंबा लेकर चल दिया और समीप जा कर ब्राह्मणी से बोले "बाई। हमारे स्वामी को दूध की आवश्यकता है, दूध दो"।

यह देख कर रोती हुई ब्राह्मणी हंसने लगी। जब कल्याण ने हंसने का कारण पूछा तो उसने कहा "मेरी गाय गिर गई है और तुम दूध मांगते हो इसीलिये मैं हसती हूं" इस पर कलयाण ने कहा "माता! चाहे तुम हंसो किन्तु दूध तो चाहिये यह कह कर आपने गाय को सम्बोधन किया और कहा "माता! उठ, स्वामी को विलम्ब होता है"। कल्याण के "उठ" कहते ही गाय उठ खड़ी हुई। कल्याण ने तूँबा दूध से भर लिया और चल दिये। इनके पीछे २ गाय भी चल दी। स्त्री ने भी कल्याण का पीछा किया और समर्थ के समीप जाकर उन के चरण छुए। इस के पश्चात् समर्थ ने गाय से कहा "माता तेरा स्वामी ब्राह्मण ही है अतः तू इस बाई के संग जा" यह कहते ही गाय ब्राह्मणी के पीछे होली। मौनी बाबा के शिष्य इस घटना को देख रहे थे। वे बड़े चकित हुए और समर्थ के समीप जाकर उन की स्तुति करने लगे। इसके पश्चात् शिष्यों ने स्वामी जी को एक दिन अपने यहां ठहराया।

शिवाजीकी गुरुभक्ति और समर्थ की योग शक्ति।

सम्वत् १५८८ में एक दिन छत्रपति शिवाजी प्रतापगढ़ से महाबलेश्वर गये। यहां आने पर विदित हुआ कि समर्थ भी आज कल यहीं हैं। यह जानकर शिवाजी समर्थ को खोजने लगे। खोजते २ सायंकाल होने आया किन्तु शिवाजी की श्रद्धा भी कम न थी अतः यह खोजतेही रहे। रात्रि होने पर मसालें

जला ली गई। महाराज को विदित था कि समर्थ बहुधा घने वन अथवा पहाड़ों की गुहाओं में रहा करते हैं अतः यह ऐसेही स्थानों में खोजते रहे। खोजते खोजते प्रातःकाल होगया। दूसरे दिन शिवाजी ने समर्थ को एक गुहामें कराहते हुए पाया। समीप जाकर देखा तो समर्थ अत्यन्त विह्वल और बोलने में सर्वथा असमर्थ थे। पास पहुंचकर शिवा जी ने कहा "आपकी ऐसी दशा क्यों होगई? क्या कष्ट है?" उत्तर में समर्थ ने बड़ी कठिनता से कहा "आज दो दिन से पेट में शूल उठा है असह्य वेदना होती है और अब तक कुछ लाभ नहीं होता दीख पड़ता।"

समर्थ के इस कथन को सुनकर शिवाजी ने कहा "महाराज! आप चिन्ता न करें मैं अभी कोई औषधि लाता हूं"। किन्तु स्वामी जी ने कहा "शिवबा! यह साधारण उदर का शूल नहीं है किन्तु यह महा असाध्य रोग है।"

स्वामी जी के इस वाक्य को सुनकर शिवाजी अत्यन्त चिन्तित हुए और बहुत दुखित होकर पूछा "महाराज! क्या इस रोग की कोई औषधि ही नहीं?" इस पर समर्थ ने कहा "बाबा! है तो किन्तु वह दुष्प्राप्य होनेके कारण न होने के ही समान है।"

स्वामी जी के कथन को सुनकर शिवाजी ने कहा "महाराज ऐसी कौनसी औषधि है?" आप कृपा कर बतलाने का अनुग्रह करें, मैं उसे किसी न किसी तरह ले आऊंगा। शिवाजी के बहुत आग्रह करने पर समर्थ ने कहा "बाबा यदि बाघिन का दूध प्राप्त हो सके तो मेरी व्यथा दूर हो सकती है अन्यथा इसका दूर होना सर्वथा असम्भव है। ऐसे अवसर पर बहुत से लोग जङ्गल में न जाकर मार्ग में से किसी का दूध ला देते

है किन्तु उससे लाभ होना सम्भव नहीं ।"

शिवा जी ने कहा "महाराज ! चाहे कुछ हो, मैं स्वयम् जाऊंगा। आप चिन्ता न करें मैं अभी बाघिन का दूध लाता हूं।" यह कहकर तत्काल स्वामी जी के तूंबे को उठा कर आप जङ्गल की ओर चल दिये ।

इस समय स्वामी जी ने कहा "अरे यह क्या ? तुम अपने को मृत्यु के मुख में देते हो" किन्तु शिवाजी ने एक न सुनी आपकी सेवा में देह अर्पण हो इससे उत्तम कृत्य मुझ से और क्या बन सकता है ? यह कहते हुए आगे बढ़ गये ।

सज्जनो ! धन्य है शिवाजी का साहस ! अहो ! क्या अनुपमेय गुरु भक्ति है। ऐसे गुरु भक्त क्यों न अभ्युदय को प्राप्त हों ।

बाघिन को ढूंढ़ते २ बहुत समय बीत गया किन्तु बाघिन क्या कोई भेड़ बकरी अथवा मार्ग में पड़ा फिरती है जो इन्हें शीघ्र ही प्राप्त हो जाती, इसके अतिरिक्त उसका दूध कैसे प्राप्त हो सकेगा ? निस्सन्देह ! शिवाजी महाराज महापराक्रमी हैं और वह बाघिन को मार सकते हैं किन्तु मारने से तो काम नहीं चलेगा और जीवित बाघिन प्रसन्नता से कैसे दूध ले लेने देगी । जो कुछ हो शिवाजी के साहस को धन्य है ।

इस प्रकार खोजते २ शिवाजी एक गुहा के समीप पहुंचे और यहां आपने दो बाघ के बच्चों को बैठे देखा ।

बच्चों को देखकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । आपने निश्चय किया कि बाघिन कहीं समीप ही होगी और वह बच्चों के समीप अवश्य ही आवेगी । यह विचार कर आप उन बच्चों के समीप जा बैठे और विचारने लगे कि बाघिन दूध कैसे दे देगी तथापि आपको विश्वास था कि परमात्मा की कृपा

और गुरू के आशीर्वाद से प्रत्येक कार्य सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार संकल्प विकल्प करते २ बाघिन आ पहुंची और जैसे ही कि उसने अपने बच्चों के समीप एक मनुष्य को बैठे देखा कि उसका पारा २२० डिग्री पर पहुंच गया और वह शिवाजी की ओर मुख फैलाकर झपटी, विशाल जाबड़े को देखकर शिवाजी की आंखों के सामने अंधेरा छा गया और आपत्ति यहहै कि महाराज उसे मारभी नहीं सकते किन्तु धन्य है शिवाजी के साहस को कि आप कुछ भी नहीं घबराये प्रत्युत इस समय आपको एक विचित्र चतुराई सूझी। वह यह कि बाघिनी के समीप आते ही आप उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे और मधुर शब्दों में इस भांति हार्दिक विनय करने लगे "हे माता मैं तुम्हारे बच्चों को लेने नहीं आया हूं और न तुम्हें आघात पहुंचाने ही आया हूं। मेरेस्वामी को तुम्हारे दूध की आवश्यकता है, दूध ले लेने दो और दे आने दो। उसके पश्चात् यदि तुम चाहो तो मुझे भले ही मार डालना। अहो! इस विनय के करते ही बाघिन एक सीधी गाय की भांति खड़ी होगई और शिवाजी ने उसके थनों से दूध निकालना आरम्भ करदिया।

इस वृत्तान्त को पढ़कर बहुत से सज्जन महाशयों के पेट में चूहे कूद रहे होंगे और बहुत सम्भव है कि वे मेरे लिये आर्येतर होने का फ़तवा देने की भी तैयारी कर रहे हों वे समझते होंगे कि ऐसा तो सम्भव ही नहीं। क्या कभी बाघिन भी किसी को दूध दे सकती है अथवा क्या कोई मनुष्य इतना निर्भय हो सकता है कि वह इस प्रकार काल के मुख में चला जाय; किन्तु यदि मेरे कुतर्की मित्र कुछ विचार और बुद्धि से काम लेंगे तो उन्हें विदित होजायगा कि यह सम्भव है और

इसमें कोई भी बात ऐसी नहीं जिसे कि असम्भव कहा जा सकता हो। मित्रो! संसार एक दर्पण के समान है। जिस प्रकार अपना मुख लाल कर लेने पर लाल और काला कर-लेने पर दर्पण में काला दीख पड़ता है उसी प्रकार अपने प्रत्येक कृत्य का इस संसार रूपी दर्पण पर प्रभाव पड़ता है।

यदि तुम संसारसे प्रेम करते हो तो संसार तुम से प्रेम करता है यदि तुम उसको हानि पहुंचाने की इच्छा करते हो तो वह भी तुमको नष्ट कर डालने की चिन्ता करता है। आत्मा आत्मा के भावों को पहिचानता है। इसीलिये शास्त्रों में कहा है कि:—

यदन्यो विहितं नेच्छेदात्मनः कर्मपूरूषः।
न तत्परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः॥

अर्थात्—जिस कर्म को तुम दूसरों से अपने लिये नहीं कराना चाहते, उचित है कि तुम भी उसे दूसरों के लिये न करो यथा यदि तुम चाहते हो कि कोई तुम्हारी उंगली भी न काटे तो तुम भी किसी की हिंसा न करो। यदि तुम चाहते हो कि प्राणी मात्र तुमको प्रेम की दृष्टि से देखें तो तुम भी सब को प्रेम की दृष्टि से देखो।

हमारे शास्त्रों ने इस विषय पर बड़ा आन्दोलन किया है। वेदों में भी अभय प्राप्त करने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करने का आदेश पाया जाता है यथा:—

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः॥

अर्थात्—हे परमात्मा! जहां२ आपका राज्य है वहां२ आप हमें अभय करें। आप अपनी प्रजा से हमें अभय करें और पशुओं से भी अभय करें।

अहो! कैसी उत्तम शिक्षा है? क्या ऐसी शिक्षा के अनुकूल आचरण करने से मनुष्य सभय बना रह सकता है? कदापि नहीं!

मित्रो! इसी मन्त्र के प्रताप से हमारे पूर्वजों के समीप हिंसक पशु आनन्द पूर्वक बैठे रहा करते थे।

इसी मन्त्र के प्रताप से ऋषिवर दयानन्द सरस्वती को मारने के लिये आनेवालों के हाथ से तलवारें और ईंटे छूट पड़ती थीं एवम् शत्रु मित्र बन जाते थे किन्तु शोक है कि आज हम एक दूसरे को नीचा दिखाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। हिंसा भाव का प्रचार करते हैं किन्तु सद्धर्म-प्रचारक होने का दम भरते हैं। हे जगत्पिता आप हमारी रक्षा करो।

अस्तु शिवाजी दूध निकाल चुके और उस गुहा की ओर चल दिये जिसमें कि स्वामी जी थे। भीतर आकर शिवाजी ने दूध स्वामी जी के चरणों में धरदिया।

समर्थ दूध देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। शिवाजी ने कहा "महाराज औषधि आ गई" किन्तु स्वामी जी ने कहा "तेरे जैसे परम गुरुभक्त शिष्य के होते हुए शूल कैसे रह सकता है। वह तो स्वयमेव शान्त होगया।

बाह की यात्रा

शाके १५६० में एक दिन जयराम स्वामी, रङ्गनाथ स्वामी और आनन्दमूर्ति सहित समर्थ "बाह" पहुंचे और एक ज्योतिषी की विधवा माता के घर में ठहरे। प्रातःकाल होतेही ये चारों कृष्णा में स्नान करने जाते थे तदोपरान्त माता के घर आकर भोजन करते थे। माता के पास एक भैंस थी। और दूध भी देती थी। इन सब को नित्य उठ स्नानार्थ जाते देखकर वृद्धा माता ने कहा

कि आप लोग सदैव स्नान करने जाते ही हैं अतः मेरी भैंस और उसके बच्चे को भी साथ लेते जाया कीजिये। जब तक आप लोग स्नान संध्या करोगे तब तक यह आस पास चरते रहेंगे तदोपरांत आते समय साथलेते आया करो।

माता की बात सब ने मान ली। दूसरे दिन से यह लोग भैंस और उसके बच्चे को साथ लेजाने लगे। एक दिन यह लोग स्नान कर रहे थे कि एक भेड़िया आया और भैंस के बच्चे को उठा ले गया। बाहर आने पर भैंस का बच्चा न दीख पड़ा। बड़ी चिन्ता हुई किन्तु करते ही क्या। अन्त में शोक करते हुए सब लोग घर चले आए जब यह समाचार माता को विदित हुआ तो उसने रोना आरम्भ कर दिया। माता को शोक करते देखकर समर्थ बहुत चिन्तित हुए और कहने लगे "रंगोबा? माता के घर पर भोजन करते हो और उसके भैंस के बच्चे को भी मरवा दिया। अब भैंस दूध कैसे देगी?" इसके पश्चात् आप माता को सम्बोधन करके कहने लगे "हे माता? यह तो मृत्युलोक है। भैंस के बच्चे के लिये इतना शोक करना उचित नहीं।

माता को समझा कर आप भैंस के समीप गये और बोले "देख! तू दूध न देगी तो अच्छा न होगा! बाई को दूध अवश्य देना"।

माता तो चिन्तित थी ही उसने शीघ्र ही परीक्षा करने के लिये भैंस का दूध निकालना आरंभ कर दिया। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात हुई कि आज भैंस ने पूर्वापेक्षा दुगना दूध दिया।

शाके १५६३ में शिवाजी महाराज कर्नाटक पर चढ़ाई करने के लिये आज्ञा प्राप्त्यर्थ समर्थ के समीप चाफलगये। और

मठ के व्यय का कुछ प्रबंध करके कर्नाटक चले गये।

शाके १५६४ के अन्त में शिवाजी ने समर्थ की आज्ञा पाकर कर्नाटक पर एक बार पुनः आक्रमण किया। इस बार विपक्षी आपके समक्ष खड़े न रह सके और आपने विजय प्राप्त की। शाके १५६५ पर्य्यंत महाराज यहीं थे। एक बार आप कदली वन में भ्रमण कर रहे थे कि एकान्त और रमणीय स्थल देखकर आप को वैराग्य ने आ घेरा। इतने पर भी आप समर्थ की आज्ञा लेना परमावश्यक समझते थे। अतः आप चाफल लौट आये और स्वामी जी के दर्शनों को गये। यहां पर आपने अपना विचार भी प्रकट किया। स्वामी जी शिवाजी के विचार को सुनकर बहुत हंसे और बोले "बाबा! तेरे तपश्चर्या करनेवाले तो तपस्या करते ही हैं। तुम अब गागा भट्ट से निमंत्रण भिजवाकर राज्याभिषेक करने का प्रबंध करो। परम गुरुभक्त शिवा जी ने स्वामी जी की आज्ञा को बिना किसी नानुनच के स्वीकार कर लिया और "आज्ञानुसार करूंगा" ऐसा कह कर प्रतापगढ़ होते हुये रायगढ़ चले आये।

समर्थ की बिल्ली

स्वामी जी परली में थे यहां पर आपने एक बिल्ली पाली और इसका नाम "रामा" रक्खा आप भोजनार्थ जाने के पूर्व नित्य पूछ लिया करते थे "रामा। तू तृप्त झालास काय? "अर्थात् रामा तू तृप्त तो है"। एक दिन बिल्ली ने मठ में घुस कर बड़ा उपद्रव किया। यह देखकर किसी शिष्य ने बिल्ली की आँखों में लाल मिरचें भर दीं। बिल्ली को बड़ा त्रास हुआ और वह कहीं एक स्थान पर जाकर तड़पने लगी किन्तु नियमानुसार भोजनार्थ जाने के पूर्व स्वामी जी ने आज पुनः रामा को बुलाया। जब

बिल्ली बुलाने पर न आई तो स्वामी जी ने खोज करने के लिये इधर उधर मनुष्य भेजे। शीघ्र मिली भी नहीं तो स्वामी जी नेकहा "निस्सन्देह! आज रामा को किसी ने त्रास दिया। इतने में एक मनुष्य बिल्ली को ले आया। इस समय स्वामी जी ने देखा कि बिल्ली की आंखों से पानी बह रहा है और वह अत्यन्त विह्वल है। स्वामी जी को बिल्ली की दशा देख-कर अत्यन्त दुःख हुआ और उन्होंने पूछा कि इसको किसने त्रास दिया ? जब किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया तो स्वामी जी ने कहा "तुम्हीं ईश्वर के हो क्या यह ईश्वर की नहीं है ? अरे भाई सबही परमात्मा के जीव हैं। तुम को ऐसा उपद्रव कदापि न करना चाहिये" स्वामी के इस दया भाव को देख कर मानना पड़ता है कि वे "सर्वाणि भूतानि समीक्षे" अर्थात् सब प्राणियों को को एक दृष्टि से देखो। इस वेद वाक्य को लिखकर नहीं प्रचार करते थे किन्तु अपने चरित्र और व्यव-हार से संसार को इस का उपदेश करते थे।

समर्थ की आज्ञा के अनुसार शिवाजी राज्याभिषेक करने का प्रबंध कर रहे थे किन्तु गागाभट्ट जी जो कि इन के पुरोहित थे सो पैठण गंगा स्नान करने गये थे। भट्ट जी को गये बहुत समय बीत गया। अन्त में राह देखते देखते शिवाजी ने बुलाने को मनुष्य भेजे मनुष्यों के पहुंचने पर भट्ट जी ने कहा समर्थ के बुलाये बिना मैं चलने को नहीं।

शिवाजी का राज्या-भिषेक

भट्टजी का कथन सुनकर आगत पुरुषों ने कहा कि आप को ऐसा कहने की आवश्यकता क्यों हुई ? समर्थ तो किसी के साथ द्वेष नहीं रखते प्रत्युत प्राणी मात्र को एक दृष्टि से देखते हैं। इसके अतिरिक्त उनही की आज्ञानुसार महाराज

ने हम लोगों को आप के पास बुलाने भेजा है। दूतों के समझाने बुझाने पर भट्ट जी सन्तुष्ट होगये और सबके साथ रायगढ़ आये। शिवाजी ने इनका स्वयम् जाकर स्वागत किया। इसके पश्चात् ये दोनों स्वामी जी के दर्शनार्थ परली गये।

यहां पहुंचने पर समर्थ ने गागा जी भट्ट को शुभ मुहर्त में शिवाजी का राज्याभिषेक कराने की आज्ञा दी। आज्ञा प्राप्त करके ये दोनों रायगढ़ चले आये। भट्ट जी ने मुहूर्त्त निश्चय किया। कुछ दिन पश्चात् शिवाजी समर्थ के समीप पहुंचे और महाराज को सब वृतान्त सुनाया। इसके साथ ही साथ आपने एक वरदान भी मांगा समर्थ पहिले तो कुछ चकितहुए किन्तु कुछ विचार कर "मांगलो" ऐसा कह दिया।

'हां' कहने पर शिवा जी ने स्वामी जी की जटा दान में मांगी। समर्थ इस इच्छा को सुनकर बड़े आश्चर्य्यित हुये किन्तु अब तो कह ही चुके थे। सारांश यह है कि शिवा जी ने स्वामी जी की जटाओं को मुड़वा दिया और अपने हाथ से उन्हें स्नान कराया। इसके पश्चात् सिंहासन पर बैठा कर छत्र और चमर आदि राजचिन्ह अर्पण किये। और भली भांति पूजा की तदुपरांत समर्थ की आज्ञासे शिवाजी रायगढ़ चले आये और यहां पहुंच कर शाके १५९६ ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को शुभ मूहूर्त में गागा जी भट्ट ने आप का राज्याभिषेक कराया और सिंहासनारूढ़ किया।

समर्थ के बड़े भाई की मृत्यु।

शाके १५९९ (सन् १६७७) ई० फालगुन बदी १४ को समर्थ के ज्येष्ठ भाई श्रेष्ठ ने इस संसार को छोड़ा। इस समय स्वामी जी चाफल में उद्धव गोसावी के साथ भजन गान कर रहे थे। भजन गान दोप-

हर में समाप्त हुआ।

भजन समाप्त करके स्वामी जी नदी की ओर चल दिये और तट पर पहुंच कर स्नान करने लगे। स्वामी जी को नियम विरुद्ध स्नान करते देख कर शिष्यों ने इसका कारण पूछा इस पर स्वामी जी ने बतलाया कि "श्रेष्ठ ने शरीर छोड़ दिया" स्वामी जी की योगशक्ति को देख कर लोग चकित रह गये। इसके उपरान्त शाके १६०० चैत्र शुक्ल १३ को स्वामी जी ने अपने शिष्य उद्धव गोसावी को श्रेष्ठ के पुत्रों को ले आने के लिये जाँव भेजा। उद्धव गोसावी इन बच्चों को समर्थ के समीप ले आये और समर्थ इनको बड़े लाड़ प्यार से अपने पास रखने लगे। श्रेष्ठ के दो पुत्र थे। बड़े का नाम रामचन्द्र और छोटे का श्यामजी था।

श्रेष्ठ की मृत्यु के समय रामचन्द्र बारह वर्ष के थे।

समर्थ की हित कामना

कुछ दिन पश्चात् समर्थ प्रतापगढ गये और यहां शिवा जी की उन्नति व राज्य वृद्धि के लिये जगदम्बा से प्रार्थना की। अहो! धन्य हैं वे शिष्य जिन की उन्नति के लिये समर्थ जैसे गुरु परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। इसके पश्चात् स्वामी जी चाफल चले आये। कुछ दिन पश्चात् शिवाजी भी यहां दर्शनार्थ आये और रामचन्द्र व श्यामजी को लेकर प्रतापगढ़ की ओर चल दिये। समर्थ भी साथ थे। शिवाजी ने इन सब का बड़ा सत्कार किया और लौटते समय बड़े आग्रह पूर्वक बहुत सा धन श्रेष्ठ के पुत्रों को भेंट किया।

शिवा जी की सेवा

शाके १६०० में शिवा जी ने पन्हाल की यात्रा की किन्तु जब चाफल के समीप पहुंचे तो स्वामी जी के दर्शन करने की इच्छा हुई। अतः आप

चाफल में ठहर गये। साक्षात्कार होने पर स्वामी जी ने कहा विजय दशमी समीप है इसे यहीं करो तो अच्छा है। शिवा जी को और चाहिये ही क्या था। वह तो किसी प्रकार स्वामी जी के पास रहना चाहते थे अतः इन्होंने सहर्ष स्वीकार करलिया। एक दिन अन्य बातचीत के प्रसंग में शिवा जी ने प्रकट किया कि महाराज जाँव में बहुत से अभ्यागत पुरुष ठहरे रहते हैं अतः यदि उनके भोजनादि के लिये प्रबन्ध करने की मुझे आज्ञा दी जाय तो अत्यन्त कृपा हो। स्वामी जी ने कहा सब निर्वाह होता जाता है कोई आवश्यकता नहीं किन्तु शिवा जी ने एक न मानी और कहा कि हाल में मेरे मन में १२१ गाँव और ११० बीघा भूमि देने की है। इसके पश्चात् जैसे २ राज वृद्धि होती जायगी तैसे २ अन्य गाँव लगाता आऊंगा। शिवाजी के इस कथन को सुन कर समर्थ ने कहा अरे शिवबा! यदि करना है तो व्यय का प्रबन्ध करदे इतने उपद्रव की क्या आवश्यकता है? पुनः जैसे २ राज्य की वृद्धि होती जाय वैसे २ गांव लगाते जाना। इतने पर भी शिवाजी ने ३३ गाँव और १२१ खंडी प्रति वर्ष अन्न देने का पत्र उसी समय लिख दिया। ये गाँव अद्‌याबधि श्वामी जी के वंशजों के पास हैं। इसके पश्चात् समर्थ की आज्ञानुसार रामचन्द्र और श्यामजी जांव चले आये।

शाके १६०१ माघ शुक्ल १५ के दिन शिवाजी समर्थ के दर्शनार्थ आये। इस बार आप का वर्तालाप परमार्थ विषय पर हुआ। शिवाजी प्रश्न करते थे और समर्थ अनुभव पूर्ण उत्तर देते थे। समर्थ के सन्तोषजनक उत्तरों से शिवा जी को महान आनन्द प्राप्त हुआ। शिवा जी के उच्च भावों को देखकर स्वामी जी ने कहा शिवबा

समर्थ और शिवा जी की अन्तिम बातचीत

"तू या काल चा जनक आहेस" अर्थात् तू समय का जनक है इस प्रकार निरन्तर वार्तालाप होता था । इस बार आप एक मास पर्य्यन्त समर्थ के समीप रहे किन्तु जाने को जी नहीं चाहता था ।

एक दिन शिवा जी ने समर्थ के भली भांति दर्शन किये। महाराज की विचित्र स्थिति देखकर समर्थ ने पूछा शिवबा क्या बात है ? शिवाजी ने इसका कुछ उत्तर न देकर रोने लगे शिवा जी को रोते देखकर समर्थ ने कहा "शिवबा ! अब तक हमारे पास रहकर क्या रोना ही सीखा है" । इसके पश्चात् स्वामी जी ने शिवाजी को वेदान्त का उपदेश किया । तदुपरांत शिवाजी रायगढ़ चले आये, शिवा जी के चले जाने के बाद शिष्यों को पिछला वृत्तान्त जानने की बड़ी अभिलाषा हुई अतः इन्होंने स्वामी जी से पिछले उपदेशों के विषय में पूछा स्वामी जी ने कह दिया कि शिवाजी का अन्त समय अब समीप है। आज अष्टमी है। राजा परीक्षित के समान शिवाजी भी आज के सातवें दिन शरीर छोड़ देगा । इस पर उद्धव गोसावी ने कहा "महाराज का कथन सत्य है किन्तु म्लेच्छों (दुष्ट मनुष्यों) का नाश नहीं हुआ" समर्थ ने कहा चाहे कुछ हो म्लेच्छों का नाश तो हो होगा इस विषय में कोई संशय न करना चाहिये इसके पश्चात् सभा का विसर्जन हुआ ।

शिवा जी की मृत्यु

मृत्यु का समय समीप आने पर शिवा जी ने अपना सब समय परमात्मा के भजन में बिताना आरम्भ कर दिया। एक दिन आपने १०० गौएं दान की और लाखों रुपये निर्धनों को दिये। इसके पश्चात् दर्भासन पर बैठ कर "शिव" नाम का जप करने लगे। अन्त में आपने राम कह कर शरीर छोड़ दिया । इस

प्रकार यह महाराष्ट्र देश का प्रताप दिनकर शाके १६०२ (सन् १६८० चैत्र शु० १५ रविवार को अस्त हो गया। देशदेशांतर में हाहाकार मच गया। समर्थ को तो पहिले ही से विदित था और यद्यपि यह माया के बन्धनों से सर्वथा पृथक थे तथापि इस समय यह अपने को न संभाल सके और एक कोठरी में घुसकर शोक करने लगे। शिष्यों ने समर्थ की दशा पर आश्चर्य प्रकट किया किन्तु उद्धव गोसावी ने कहा "आश्चर्य करने की बात नहीं। समर्थ का अवतार केवल शिवा जी के लिये ही हुआ था अतः उसकी भी अब समाप्ति समझो"।

शिवाजी के शरीर छोड़ने के पश्चात् समर्थ ने बाहर निकलना बन्द कर दिया। आप कहीं नहीं निकलते थे। यहाँ तक कि रामनवमी के दिन जाँब भी नहीं जाते थे।

अष्टमोध्यायः

समर्थ का निर्वाण

शाके १६०३ (सन् १६८१) के रामनवमी उत्सव पर समर्थ चाफल गये और उत्सव समाप्त होने पर सज्जन गढ़ लौट आये। कुछ समय पश्चात् कल्याण गोसावी समर्थ के दर्शनों के लिये आये। इसी समय दास बोध का बीसवां दशक समाप्त हुआ। समाप्ति पर मूल प्रति कल्याण ने लिखी और समर्थ ने अपने हाथों से उसकी अशुद्धियों को ठीक किया। यह प्रति अब तक डोमगांव में है। कल्याण स्वामी के जाने के पश्चात् समर्थ ने अन्नाहार बन्द कर दिया। केवल दूध पीकर रहने लगे। उद्धव और आका के अतिरिक्त कोठरी में किसी को जाने की आज्ञा न थी इस समय आपके मुख पर तेज बढ़ता जाता जाता था किन्तु शरीर क्षीण होता जाता था उद्धव गोसावी ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो व्याधि शमनार्थ

किसी वैद्य को बुलाया जाय किन्तु स्वामी जी ने हंस कर उत्तर दिया तुम लोगों को अद्य पर्यन्त देह के ऊपर ममता बनी ही है। देह को व्याधि होती ही है अतः किसी औषधि वा अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है।

जब लोगों ने देखा कि स्वामी जी उत्तरोत्तर कृश और क्षीण होते जाते हैं तब उन्हों ने स्थान छोड़ने की सम्मति दी। इस पर स्वामी जी ने कहा :—

साधुदेह दुःखांत पडला। अथवा श्वानादिकीं भक्षिला।
प्रशस्त न वाटावें मनाला। मंद बुद्धी स्तव॥

अर्थात् साधुओं के देह को दुःख हो और चाहे उसे कुत्ते आदि खालें, यह केवल मंद बुद्धियों को बुरा लगता है। इसके पश्चात् स्थान छोड़ने के लिये कभी किसी ने न कहा।

एक दिन स्वामी जी ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही और यह जानना चाहा कि हमारे शिष्यों में किसी को हमारा अंतकाल विदित है या नहीं। इस विचार से स्वामी जी ने यह आधा श्लोक पढ़ा।

रघुकुल तिलकाचा वेल सन्नोध आला।
तदुपरि भजनानें पाहिजे सांग केला॥

अर्थात् रघुकुल तिलक का समय समीप आगया है अब संग भजन करना चाहिये। यह सुनकर उद्धव गोसावी ने इस प्रकार श्लोक की पूर्त्ति कीः—

अनुदिन नवमी हे मानसी आठवावी।
बहुत लगवगी नें कार्य सिद्धी करावी॥

अर्थात् अन्तिम दिन नवमी का स्मरण रखना चाहिये और बड़ी शीघ्रता से कार्य सिद्धि करनी चाहिये।

इस पूर्ति को सुनकर समर्थ अत्यन्त प्रसन्न हुये और

उन्होंने भजन करने की आज्ञा दी। अष्टमी के दिन रात भर भजन होता रहा। सब शिष्य एकत्रित हुये। नवमी का दिन आया। इस दिन समर्थ स्वयम् पलंग से नीचे उतर कर बैठे और शिष्यों के बहुत आग्रह करने पर कुछ मिश्री और दाख खाकर थोड़ा सा जल पान किया। कुछ समय पश्चात् शिष्यों ने पुनः पर्यंक पर बैठने की प्रार्थना की किन्तु स्वामी जी ने कहा "तुम लोग उठा कर बैठा दो"। आज्ञा पर उद्धव गोसावी उन्हें उठाने लगे किन्तु वे न उठे! अन्त में बहुत से शिष्यों ने मिलकर उठाने की चेष्टा की किन्तु वे तब भी न उठे इसके पश्चात् स्वामी जी ने सबको प्रथक होजाने की आज्ञा दी। लोगों के हटने पर स्वामी जी वायु आकर्षण करने लगे और यह दशा देखकर सब शिष्य चिल्ला २ कर रोने लगे।

शिष्यों को रोते देखकर समर्थ ने कहा "आजपर्यंत आमचा पाशीं राहून रडावयाचेंच सार्थक केलें की काय" अर्थात् आज तक हमारे साथ रहकर क्या रोना ही सीखे हो? शिष्यों ने कहा सगुण मूर्त्ति जाती है अब भजन किससे करेंगे और बोलने की इच्छा होने पर किससे बोलेंगे। इस पर समर्थ ने कहा "ज्यास माझ्या पश्चात् माझ्यापाशीं बोलावें से बाटेल, त्याने दासबोध इत्यादि ग्रंथ वाचावेत"।

अर्थात् जो मेरे पीछे मुझसे बोलना चाहे सो मेरे दासबोध आदि ग्रंथों का पाठ करे। उन्हें पढ़ना मुझसे बात करने के समान है। इतना कह कर ग्यारह बार "हर हर" कहा और अन्त में राम राम कह कर शरीर छोड़ दिया। इस प्रकार शाके १६०३ (सन् १६८२ ई० फर्वरी) में माघ कृष्ण ९ के दिन (सम्वत् १७३८ फालगुण मास के कृष्ण पक्ष की नवमी को) महाराष्ट्र प्रान्त का एक मात्र सिद्ध रत्न चातुर्य की प्रत्यक्ष

मूर्ति राजनीति विशारद, भक्ति, ज्ञान और त्याग का आदर्श और निस्पृह उपदेशक, सुधारक वा महात्मा आज संसार से चल बसा।

सज्जनों! जिस कर्म वीर पुरुष ने शिवाजी को भारतवर्ष और हिन्दुओं के लिये शिव बनाया वह अब संसार में नहीं रहा। हा! स्वामी जी आप तो अपनी इच्छा के अनुसार भारत का उद्धार करने के लिये ही संसार में आये थे पुनः बिना धर्म की स्थापना किये आप कैसे चल दिये? जो कुछ हो निश्चय है कि आप का इसमें कोई अपराध नहीं है प्रत्युत हमें ही प्रालब्ध वश अभी कुछ दिन और दुःख भोगना है।

सिंहावलोकन

स्वामी जी के चरित्र का यदि पूर्ण रीत्या सिंहावलोकन किया जाय तो वह यद्यपि बड़ा ही महत्वपूर्ण होगा तथापि उसके लिये बड़े परिश्रम, समय और स्थल की आवश्यकता है; इतने पर भी स्वामी जी के प्रत्येक कार्य का सिंहावलोकन न करके हम कुछ मुख्य २ बातों का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं।

स्वामी जी का बालपन

सात या आठ वर्ष की अवस्था पर्य्यंत स्वामी जी एक उपद्रवी बालक थे किन्तु इसके पश्चात् अर्थात् ११-१२ वर्ष की अवस्था में जब कि प्रायः बालकों को शरीर की भी सुधि नहीं होती स्वामी जी देश की दशा का अनुभव करने लगे थे। इससे बढ़कर प्रमाण स्वामी जी के एक महान पुरुष होने में और क्या प्राप्त हो सकता है। इसके पश्चात् बारह वर्ष की अवस्था से लेकर २४ वर्ष की अवस्था पर्य्यंत जिस समय

कि मनुष्य के लिये अपने को संभालना दुस्तर हो जाता है और संसार की अनेक विषय वासनाएं आंखों के सामने नृत्य करती हैं, स्वामी जी का इन सब की ओर से सर्वथा चित्त हटा कर देशोद्धार करने के लिये बीड़ा उठाना और अपने सुख भोगनेवाले कोमल शरीर को पत्थर बना देना या पानी में गला देना भी हमारे जैसे निर्बल आत्मा के पुरुषों को आश्चर्य्य सागर में फेंक देता है।

बारह वर्ष पर्य्यंत तपश्चर्य्या करके अपने शरीर को संसार के कष्टों का सामना करने के योग्य बना कर देश की यथार्थ दशा का अनुभव करने के लिये स्वामी जी भारत माता की परिक्रमा करने निकले। बारह वर्ष पर्य्यंत देश के कोने २ को अपनी आंखों से देख कर स्वामी जी ने अपने घर की यथार्थ स्थिति का बोध किया और उसके पश्चात् अर्थात् प्रत्येक भांति का बल और ज्ञान सम्पादन करके देशोद्धार का कार्य आरम्भ किया।

कार्य करने की प्रणाली स्वामी जी की बहुत ही उत्तम थी और वही थी जिसका कि अवलम्बन इनके पहिले स्वामी शंकराचार्य्य ने किया था अथवा इनके पश्चात् स्वामी दयानन्द ने किया अर्थात् जिस स्थान पर समर्थ प्रचारकरने जाते थे वहीं अपना समाज स्थापित करके उसका एक प्रधान बना देते थे जिससे कि उनकी अनुपस्थिति में भी उनके सिद्धान्तों का प्रचार होता रहे। संसार में कार्य करने के लिये इससे उत्तम प्रणाली और क्या हो सकती है?

स्वामी जी ने कितने मनुष्य अपने अनुयायी बनाये और कहां २ मठ व समाज स्थापित किये इस बात का ठीक २ पता आज तक नहीं लगाया जा सका और न अब लगना

सम्भव है इतने पर भी यह तो निश्चय है कि उन्होंने लक्षों पुरुषों को अपना शिष्य व अनुयायी बनाया। जिन लोगों ने इस सम्बन्ध में कुछ अन्वेषण किया है उनका कथन है कि स्वामी जी के शिष्य भारतवर्ष भर में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करके लोगों में जागृति उत्पन्न करते थे। इसके अतिरिक्त गिरिधर स्वामी का कथन है कि समर्थ ने सहस्त्रों शिष्य गुप्त रीति से रखे हुये थे और उनको स्वामी जी के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। खानदेशस्थ सत्कार्योत्तेजक सभा ने जो कुछ स्वामी जी के विषय में अन्वेषण किया है उससे अब तक ८९ महंतों का पता लगा है। इनमें कुछ के नाम यह हैं।

१—कल्याण स्वामी, डोमगांव के मठ में।
२—दत्तात्रेय स्वामी, शिर गांव के मठ में।
३—वासुदेव स्वामी, करोहरी के मठ में।
४—देवदास, दादेगांव के मठ में।
५—उद्धव स्वामी, टाकली के मठ में।
६—दिवाकर स्वामी, चाफल के मठ में।
७—अनन्त मोनी, कर्नाटक के मठ में।
८—पंडित विश्वनाथ, उत्तरीय भारत में।
९—बाल कृष्ण बरार में।
१०—माधव
११—यादव और
१२—वेनीमाधव प्रयाग में।
१३—जनार्दन, सूरत में।
१४—श्रीधर रामकोट में।
१५—गोविंद, गोवा में।
१६—शिवराम तैलंग प्रान्त में।

१७—शंकर श्रीरंग पट्टन में।
१८—हरिश्चन्द्र अन्तर्वेद में।
१९—रामकृष्ण अयोध्या में।
२०—हरिकृष्ण मथुरा में।
२१—जयकृष्ण मायापुरी में।
२२—रामचन्द्र काशी में।
२३—भगवंत काँची में।
२४—हरि द्वारका में।
२५—दयाल बदरी केदार में।
२६—ब्रह्मदास ओंकारेश्वर में।
२७—वल्लाल जगन्नाथ में।
२८—हनुमान रामेश्वर में।

समाज स्थापना और सम्भाषण द्वारा प्रचार करने के साथ ही साथ स्वामी जी अपने लेखों द्वारा भी देश की सेवा करते थे।

जीवन भर में स्वामी जी ने सैकड़ों पुस्तकें लिखीं किन्तु शोक है कि वे सब इस समय उपलब्ध नहीं हैं इतने पर भी अब तक छोटी बड़ी १९ पुस्तकें प्राप्त हुई हैं और उनके नाम यह हैं:—

१ दासबोध २ रामायण ३ मन के श्लोक ४ चौदा शतक ५ जनस्वभाव गोसावी ६ पंच समासी ७ जुनाट पुरुष ८ मानस पूजा ९ जुना दासबोध १० पंचीकरण योग ११ चतुर्थ योग मान १२ मान पंचक १३ पंचमान १४ रामगीता १५ कृतनिर्वाह १६ चतुः समासी १७ अक्षरपद संग्रह १८ सप्त समासी १९ रामकृष्णस्तव।

उपर्युक्त ग्रन्थों में दासबोध* बड़े महत्व का ग्रन्थ है और यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो यह प्रत्येक भांति से तुलसी कृत रामायण के समान और कहीं २ उससे भी अधिक शिक्षा प्रद है। हिंदी पाठकों के सौभाग्य वश इस का हिंदी अनुवाद भी हो गया है जो कि चित्र शाला प्रेस पूना से प्राप्त होता है।

दासबोध को पढ़ने से विदित होता है कि स्वामी जी का अनुभव अगाध था लिखने की शैली भी अत्यंत रोचक, उपदेशपूर्ण और प्रभावोत्पादक है। शब्द योजना बड़ी ही विचित्र है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से स्वामी जी के चरित्र का सिंहावलोकन भी हो जाता है। इस में उन्होंने स्थान २ पर अपने जीवन के उद्देश्य और कामों का वर्णन किया है इस के साथ ही साथ यह भी बतलाया है कि अपने उद्देश्य में उन को कहां तक सफलता प्राप्त हुई। एक स्थान पर उन्होंने कहा है :—

जीवींचा पुरला हेतू। कामना मन कामना।
घमेड जाहलें मोठें। घवाड साधलें बलें॥

अर्थात् जी का हेतु पूरा हो गया और कामना का मन में काम नहीं है। बहुत कीर्त्ति प्राप्त हुई और अत्यंत लाभ हुआ। इस श्लोकार्ध से विदित होता है कि स्वामी जी अपने उद्देश्य की पूर्ति कर चुके थे और उनका आत्मा अत्यन्त संतुष्ट था। इतने पर भी उन को अभिमान छू नहीं गया था। वे सदैव कहा करते थे :—

मी कर्त्ता ऐसे म्हणसी। तेणें तू कष्टी होसी।
राम कर्त्ता म्हणतां पावसी। यश कीर्त्ति प्रताप॥

अर्थात् यदि तू कहेगा कि मैं कर्त्ता हूं तो तुझे कष्ट होगा और

*इन ग्रन्थों से स्वामी जी को कई भाषाओं का और छन्द प्रबन्धों का ज्ञान था यह प्रतीत होता है।

यदि कहेगा कि परमात्मा कर्त्ता है तो यश कीर्त्ति और प्रताप पावेगा।

अहङ्कार रहित होने के अतिरिक्त समर्थ को परमात्मा पर बड़ी श्रद्धा थी। वे प्रत्येक कार्य को भली भांति सोच विचार कर करते थे और उस में परमात्मा को सदैव अपना सहायक समझते थे। एक स्थान पर उन्होंने कहा है :—

कल्यांत माडला मोठा, म्लेंच दैत्य बुड़ावया।
कैपक्ष घेतला देवीं, आनन्द वन भुवनीं॥

अर्थात् म्लेच्छ दैत्यों का संहार करने के लिये परमात्मा ने हमारा पक्ष ग्रहण किया। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि स्वामी जी का मुख्य धर्म क्या था और उस में उन को कहां तक सफलता प्राप्त हुई अथवा कहां तक परमात्मा से सहायता मिली। जो सज्जन महाराष्ट्र के १७ वीं शताब्दि के इतिहास से परिचित हैं वे जानते होंगे कि इस समय हमारे शिरों पर समर्थ ही के सामर्थ से शिखा शेष है।

दया और त्याग की तो स्वामी जी प्रत्यक्ष मूर्त्ति थे। भुट्टों के ऊपर मारने वाले को गांव दान दिलाना और शिवा जी के दान किये हुए राज्य को लौटा देना इन दोनों बातों के अति उत्तम प्रमाण हैं।

दया और त्याग के साथ ही स्वामी जी में जीवन की मात्रा भी अत्यंत प्रबल थी और वे अन्याय को दबाने में कभी प्राणों की भी चिंता नहीं करते थे। इस विषय में

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदन्न धीराः।

यही उन का एक मात्र अटल सिद्धान्त था। इसी सिद्धान्त को उन्होंने अपने शब्दों में इस प्रकार लिखा है :—

आता होणार तें होये ना का। जाणार तें जाये नाका॥
तुतली मनांतील अशंका। जन्म मृत्युची॥

अर्थात् जो होना हो सो हो और जो जाता हो सो जाय। जन्म मरण का भय नहीं है।

यही शिक्षा वे अपने शिष्यों को दिया करते थे और जब वे भली भांति इस पर दृढ़ हो जाते थे तब उन्हें प्रचार करने बाहर भेजते थे।

स्वामी जी की इस आज्ञा का पालन अन्य शिष्यों की अपेक्षा महाराज शिवाजी ने अधिक उत्तम रीति से किया और इसी लिये उनका नाम भी संसार में अमर है। शिवाजी ने जो कुछ कार्य किया सो समर्थ की आज्ञा से किया अतः शिवा जी के प्रत्येक कार्य को समर्थ का कार्य कहना चाहिये।

सज्जनो! पिछली बातों को जाने दो और आरम्भ के दिये हुए गुरू मंत्र पर ही विचार करो। अहो! जिस महात्मा ने अपने गुरू मंत्र में यही शिक्षा दी कि "देश का उद्धार करो" गौ ब्राह्मण की रक्षा करो, धर्म की स्थापना करो, और दुष्टों का नाश करो" ऐसे महान पुरुष को भुला कर अथवा उसे अपना पूज्य और उद्धार कर्त्ता न मानकर कौन हृदयधारी कृतघ्नता रूपी महापाप को अपने सिर पर लेगा। इसके अतिरिक्त जब कभी शिवाजी ने कुछ सेवा करने की आज्ञा मांगी तो कभी विद्या प्रचार की आज्ञा देना और कभी अन्य भाषाओं का उपयोग बन्द करके निजमातृ भाषा के गौरव को बढ़ाने की आज्ञा देना क्या कुछ कम महत्व पूर्ण कृत्य है।

इस के साथ ही साथ समय पड़ने पर स्वामी जी शिवाजी को फटकारने में भी नहीं चूकते थे। शिवाजी के मन में उत्पन्न हुए अहङ्कार और वैराग का बार २ नाश करके तथा उनको

क्षत्रियोचित कर्त्तव्यपर आरूढ़ करके जो उपकार उन्होंने आर्य व हिंदू जाति पर किया है सो वर्णनातीत है और उसे कोई हृदय-धारी प्रलय पर्य्यंत नहीं भूल सकता। देशोद्धार का कार्य करने के पश्चात् उन के मरण समय का वृत्तान्त बतलाता है कि स्वामी जी ने जो कुछ किया सो बहुत ही उचित आवश्यक और कर्त्तव्य समझ कर किया। उन का आत्मा मरते समय व्याकुल नहीं था किन्तु परम संतुष्ट था और यदि हम कहें कि वे जीवन मुक्त थे तो कोई अत्युक्ति नहीं है।

उपसंहार

चरित्र ही चरित्र में परिवर्तन करने को समर्थ होता है। विषय वासनाओं से पूर्ण उपन्यासों को पढ़कर यदि मनुष्यों का विषयी होना सम्भव है तो उत्तम चरित्रों का पाठ करके हमारे जैसे दुष्टों का सच्चरित्रवान हो जाना भी सम्भव है। परमात्मा की कृपा से समर्थ का जीवन चरित्र बहुत ही उत्तम, शिक्षा प्रद जातीयता के भावों का संचार करनेवाला एवम् अकर्मण्य पुरुषों को कर्त्तव्यपथ पर आरूढ़ करने वाला है अतः हमें विश्वास है कि यदि इस का पाठ किया जायगा और इसके अनुकूल आचरण करने की चेष्टा की जायगी तो हमारा अभ्युदय होगा।

॥इति॥